VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/ 57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2018 TO 31.12.2020)

६७, ९ दिसम्बर २०१८

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

संस्थापक–सम्पादक :

स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादक:

प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
(सञ्चालक)

सह–सम्पादक :

डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर
होश्यारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द
चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल
होश्यारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला
पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	:	१२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	१०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	१० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	२५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
श्री ठाकुरदास कुल्हारा	ढो रहे हैं बोझ हम	कविता	२
श्री महेन्द्र सिंह शेखावत 'उत्साही'	आदर गुणों का	कविता	२
डॉ. मिताली देव	वेदाङ्गों में कल्पविमर्श	लेख	३
डॉ. जीवन आशा	मानसिक स्वास्थ्य का साधन योग	लेख	८
श्री बाबूलाल शर्मा प्रेम	नया संकल्प	कविता	१४
प्रो. (डॉ.) जमना लाल बायत्ती	स्वामी विवेकानन्द के आर्थिक विचार	लेख	१५
डॉ. साधना	भक्तिकाल और कृष्णकाव्य की नारी	लेख	२०
डॉ. सन्दीप कुमार	अग्निपुराण में वर्णित आयुर्वेद सार के अन्तर्गत वृक्षायुर्वेद एवं गवायुर्वेद	लेख	२२
डॉ. विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी'	भारतीय दर्शन के विकास में बिहार के प्राचीन ऋषियों, महर्षियों एवं दार्शनिकों का योगदान	लेख	२६
डॉ. बलवन्त सिंह चौहान	कवि केदार प्रणीत 'ने० सुभाषचरितम्' महाकाव्य में नायक का चरित्र-चित्रण	लेख	३१
सुश्री रजनी बाला	संस्कृत-साहित्य में श्री गुरुगोबिन्द सिंह जी का योगदान	लेख	३७
श्री महेन्द्र कुमार	संस्कृति साहित्य को संस्कारित करती है	लेख	४१
	संस्थान-समाचार		४५
	विविध-समाचार		४६
	पुण्य-पृष्ठ		४७-४८

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६७ होश्यारपुर, मार्गशीर्ष २०७५; दिसम्बर २०१८ संख्या ९

यत्किञ्चेदं वरुण दैव्ये जने,
ऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि।
अचित्त्या चेत्तव धर्मा युयोपिम,
मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः।।

(ऋग्वेद, ७, ८९,५)

हे वरुण देव! (मनुष्याः) हम साधारण मनुष्य हैं हम (किञ्च) कभी न कभी (जानते हुए भी) (दैव्ये जने) देवताओं के प्रति (अभिद्रोहं) द्रोह (चरामसि) कर बैठते हैं। कभी-कभी (अचित्त्या) अनजाने में हम तुम्हारे (धर्मा) नियमों को (युयोपिम) भंग करते रहते हैं। हे देव! हमारे (मनों से) इस (दोनों प्रकार के) (एनसः) पाप का संस्कार दूर हो। हमारा इससे (न रीरिषः) नाश मत हो।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान्।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः।।

(मुण्डकोपनिषद्, ३.१०)

विशुद्ध अन्तःकरण वाला मनुष्य जिस-जिस लोक को मन से चिन्तन करता है और जिन भोगों की कामना करता है। वह उन-उन लोकों को जीत लेता है और भोगों को भी प्राप्त कर लेता है। इसलिए ऐश्वर्य की इच्छा वाला मनुष्य शरीर से भिन्न आत्मा को जानने वाले महात्मा का आदर-सत्कार करे।।

ढो रहे हैं बोझ हम

श्री ठाकुरदास कुल्हारा

ढो रहे हैं बोझ हम
अनंत कामनाओं का।।

प्राणी पदार्थों से
आसक्ति करके हम
सुख की तलाश में,
विभिन्न वासनाओं का।।

पाते ही कष्ट फिर
ढोते हैं बोझ हम
अनेक, चिंताओं का।।

काम, क्रोध, लोभ, मोह
आदि, मन रोगों का।।

क्षणिक सुख पाते हम,
ढो रहे हैं, बोझ नित
अपार दुख, दर्दों का।।

जानते हुये भी हम,
भूले ही रहते हैं
'खाली हाथ आये हैं
खाली हाथ जाना है'
फिर भी ढो बोझ रहे
धन की सुरक्षा का
विविध समानों का।।

अंतिम घड़ी तक यों
ढोते ही रहते हैं
बोझ लालसाओं का।।

-23, गंगानगर गढ़ा, जबलपुर (म.प्र.) 482003

आदर गुणों का

—श्री महेन्द्र सिंह शेखावत 'उत्साही'

कॉव-कॉव कर बोले कौआ,
सबके मन को घोरे कौआ।

कुहू-कुहू कर बोले कोयल,
मिश्री मन में घोले कोयल।

रंग एक सा दोनों पाये,
फिर भी कोयल सबको भाये।

रूप-रंग पर कभी न जाओ,
अच्छे गुण को सब अपनाओ।

76-ए, कैलाश नगर, गली नं. 6, झोटावाडा, जयपुर-302012

वेदाङ्गों में कल्पविमर्श

–डॉ. मिताली देव

वेदाङ्गों का वेद संरक्षण की परम्परा में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनुसंधानकर्ताओं के मतानुसार वेदाङ्ग साहित्य का आविर्भाव उपनिषत्काल में ही हो गया था। मुण्डकोपनिषद् में षड्वेदाङ्गों के क्रम तथा नामों का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। मुण्डकोपनिषद्[1] में अपरा विद्या के प्रसङ्ग में वेदों के अनन्तर वेद के षट्अङ्गों का भी वर्णन उपलब्ध होता है। यथा– (1) शिक्षा (2)कल्प (3)व्याकरण (4) निरुक्त (5)छन्द (6)ज्योतिष।

वेदाङ्ग

शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द ज्योतिष

वेदमंत्रों के उच्चारण की उचित परिपाटी का परिज्ञान ही शिक्षा है। वैदिक-वाङ्मय में प्रतिपादित कर्मकाण्ड एवं याज्ञिक अनुष्ठानों के विविध अङ्गों का वर्णन कल्प में प्राप्त होता है। व्याकरण में वैदिक-शब्दों के विभिन्न प्रयोग, वाक्यविन्यास की प्राचीन शैली का वर्णन है। शब्दों की अर्थगत परम्पराओं की विविधता भी व्याकरण का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय रहा है। शब्दों के निर्वचन द्वारा अर्थनिर्णय और प्रकृति-प्रत्यय के स्वरूप द्वारा अज्ञात शब्दों का अर्थ निर्धारण निरुक्त का मुख्य विषय है। वैदिक-मंत्रों में उपनिबद्ध छन्दों के भेद-प्रभेदों का पूर्ण वर्णन वेदाङ्ग के छन्दः-प्रभेद में प्राप्त होता है। यज्ञयागादि अनुष्ठानों के प्रारम्भ होने से पूर्व उचित समयनिर्धारण की व्यवस्था ज्योतिष द्वारा सम्पन्न होती है।

वेदाङ्गों में कल्पसाहित्यः वेदाङ्गों में कल्पसाहित्य का महत्त्व अक्षुण्ण है। ब्राह्मण-साहित्य में यज्ञ-प्रक्रियाओं का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। उसे क्रमबद्ध करना और विशिष्ट शैली में समन्वित करना नितान्त आवश्यक था। अतः इसके लिये तात्कालिक ग्रन्थनिर्माण की प्रचलित सूत्रशैली में जिस साहित्य का निर्माण हुआ, उसे ही कालान्तर में कल्पसाहित्य के रूप में अभिहित किया गया। ऋग्वेद प्रातिशाख्य की वर्गद्वयवृत्ति में श्री विष्णुमित्र ने कल्प का अर्थ इस प्रकार किया है–

कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम् अर्थात् वेदविहित कर्मों का क्रमिक स्वरूप व्यवस्थित करने वाला शास्त्र ही कल्प कहलाता है।

कल्पसाहित्य की निर्माणपरम्पराः–

कल्पसाहित्य मुख्यतः सूत्रात्मक शैली में उपलब्ध होता है। कल्पसूत्रों का ब्राह्मणों और आरण्यकों से साक्षात् सम्बन्ध है। इससे यह सिद्ध

होता है कि यह निर्विवाद रूप से प्राचीन है। ऐतरेय आरण्यक में सूत्ररूप में व्यवस्थित अनेक उक्तियों का उल्लेख प्राप्त होता है। सम्प्रदाय-परम्परा के अनुसार इन्हें शौनक एवं आश्वलायन रचित ही माना जाता है। प्राचीन काल में यज्ञ भारतीयों का प्रधान धार्मिक कृत्य था, किन्तु यज्ञ सम्बन्धित विधान इतने विस्तार के साथ ब्राह्मणग्रन्थों में प्रतिपादित किये गये कि उनका संक्षिप्त एवं व्यवहारोपयोगी स्वरूप प्रतिष्ठित करने वाले ग्रन्थों की अनिवार्य रूप से आवश्यकता प्रतीत होने लगी और इसी आवश्यकता की पूर्त्ति के लिये वेद की प्रत्येक शाखा में कल्पसूत्रों का निर्माण किया गया।

कल्पसूत्रों का विभाजनः विषयविवेचन की दृष्टि से कल्पसूत्र चार भागों में विभाजित किया जा सकता है-

कल्पसूत्र

श्रौतसूत्र गृह्यसूत्र धर्मसूत्र शुल्बसूत्र

श्रौतसूत्रों का परिचयः श्रौतसूत्रों में श्रौताग्नि में सम्पादित होने वाले यज्ञों का क्रमिक और तात्त्विक वर्णन दिया गया है। उन में अत्यधिक गंभीर विषयों का विवेचन प्राप्त होता है। दर्शपूर्णमास, आग्रायणेष्टि, निरूढ़पशु, सत्र, गवामयन, वाजपेय, सौत्रामणी आदि श्रुति प्रतिपादित महत्त्वपूर्ण यज्ञों का क्रमबद्ध वर्णन करना अत्यधिक कठिन कार्य है। इनमें से कई यज्ञ एकाधिक दिनों तक चलते थे-यथा सत्रयज्ञ द्वादश दिनों तक चलने वाला द्वादशसत्यायुक्त याग विशेष है, गवामयन वर्षपर्यन्त सम्पादित होने वाला यज्ञ है। अहीनयाग दो से लेकर एकादश दिनों तक चलने वाला विशिष्ट याग है। यागीय प्रक्रिया की व्याख्या की दृष्टि से श्रौतसूत्र अनुपम ग्रन्थ हैं। यद्यपि वर्तमान समय में श्रौतसूत्रों का प्रचार दुर्लभप्राय है, तथापि इन सूत्रग्रन्थों के परिशीलन से प्राचीन धार्मिक आस्थाओं एवं मर्यादाओं का सुस्पष्ट परिज्ञान किया जा सकता है।

ऋग्वेदीय श्रौतसूत्र एवं गृह्यसूत्रः ऋग्वेद के दो श्रौतसूत्र उपलब्ध हैं-

(क) आश्वलायन श्रौतसूत्र

(ख) शांखायन श्रौतसूत्र।

गृह्यसूत्रों में गृह्याग्नि में सम्पन्न होने वाले यज्ञों के साथ-साथ उपनयन, विवाह, श्राद्ध आदि संस्कारों का विस्तृत विवरण है। पूर्वोक्त आश्वलायन एवं शांखायन श्रौतसूत्रों से सम्बन्धित दो गृह्यसूत्र प्राप्त होते हैं। यथा- आश्वलायन गृह्यसूत्र एवं शांखायन गृह्यसूत्र। आश्वलायन गृह्यसूत्र में चार अध्याय हैं, जो खण्डों में विभाजित हैं। इसमें अनेक विशिष्ट पदों तथा संस्कारों की विस्तृत व्याख्यायें प्रस्तुत की गई हैं। उदाहरणार्थ ऋषि-तर्पण सम्बन्धित प्रक्रिया की मीमांसा बहुत ही शास्त्रीय तथा अद्वितीय शैली में निरूपित है। वेदाध्ययन की विशिष्ट परिपाटी का वर्णन भी इसमें उपलब्ध होता है। इसके चतुर्थ खण्ड में उपाकर्म (श्रावणी) संस्कार का

महत्त्वपूर्ण विश्लेषण किया गया है।

कुछ श्रौत एवं गृह्यसूत्र अभी अप्रकाशित हैं। ऋग्वेद की तीसरी शाखा कौषीतकी के कल्पसूत्रों का अनुसंधान विद्वानों द्वारा किया गया है। कौषीतकी गृह्यसूत्र की रचना शांभव्य ने की थी, इसलिये इसको शांभव्यसूत्र के नाम से जाना जाता है। शांखायन गृह्यसूत्र की रचना सुयज्ञ ने की थी।

यजुर्वेदीय श्रौत एवं गृह्यसूत्रः

शुक्ल यजुर्वेद में प्रमुख रूप से कात्यायन श्रौतसूत्र एवं पारस्कर गृह्यसूत्र उपलब्ध होता है।

पारस्कर गृह्यसूत्रः

यह अत्यन्त उत्कृष्ट सूत्रग्रन्थ है। यह अत्यन्त प्रसिद्ध और प्रामाणिक रचना है। इसकी प्रसिद्धि का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इस सूत्र पर अधिकतम व्याख्यायें उपलब्ध हैं। पाँच प्रसिद्ध भाष्यकारों की टीकाओं से सुसज्जित पारस्कर गृह्यसूत्र का नवीनतम संस्करण सम्प्रति प्रकाशित है। ये पाँच भाष्यकार इस प्रकार हैं–कर्क, जयराम, हरिहर, गदाधर तथा विश्वनाथ।

इनमें कर्क 'कात्यायनश्रौतसूत्र' के व्याख्याता के रूप में प्रसिद्ध विद्वान् हैं। यह गृह्यसूत्र काण्डों में विभाजित है। इसमें विवाह, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण आदि संस्कारों, पंचमहायज्ञ, श्रावणीकर्म, सीतायज्ञ आदि का विवेचन बहुत ही शास्त्रीय पद्धति से किया गया है।

कृष्ण यजुर्वेद के श्रौतसूत्रः इसको निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

कृष्ण यजुर्वेदीय श्रौतसूत्र

तैत्तिरीय शाखीय श्रौतसूत्र मैत्रायणी शाखीय श्रौतसूत्र

बौधायन आपतस्तम्ब हिरण्यकेशी वैखानस भारद्वाज मानव श्रौतसूत्र। इसमें भारद्वाज और काठक गृह्यसूत्र भी उपलब्ध हैं।

सामवेदीय श्रौत एवं गृह्यसूत्रः

आर्षेय कलपसूत्र सामवेद का एकमात्र उपलब्ध कल्पसूत्र है। यह सामगान की पद्धतियों का विवरण प्रस्तुत करता है। इसके रचयिता मशक नामक विद्वान् है, इसलिए इसको मशक कल्पसूत्र भी कहा जाता है। सामवेद की अन्य शाखाओं पर भी कल्पसूत्र मिलते हैं। इसमें कौथुमशाखा के लाट्यायन श्रौतसूत्र और राणायनीय शाखा से संबद्ध जैमिनीय श्रौतसूत्र प्रमुख हैं।

सामवेद का मुख्य गृह्यसूत्र गोभिल गृह्यसूत्र है, यह कौथुम शाखा से सम्बन्धित है। 'खादिर गृह्यसूत्र' राणायनीय शाखा से सम्बद्ध है। जैमिनीय गृह्यसूत्र भी अत्यन्त उपादेय है। गोभिल और जैमिनीय गृह्यसूत्र इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि इनमें दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाले धार्मिक संस्कारों की व्याख्या अत्यन्त सुन्दर ढंग से की गयी है।

सामवेदीय कल्पसूत्र

आर्षेय लाट्यायन जैमिनीय

(कौथुम शाखा) (राणायनीय शाखा)

सामवेदीय गृह्यसूत्र

गोभिल खादिर जैमिनीय

(कौथुम शाखा) (राणायनीय शाखा)

अथर्ववेदीय श्रौत एवं गृह्यसूत्र:

अथर्ववेद के कल्पसूत्रों की रचना भी विभिन्न ऋषि-महर्षियों द्वारा की गई। अथर्ववेद से सबंधित प्रसिद्ध वैतान श्रौतसूत्र है। वैतान--शब्द का तात्पर्य है-त्रिविधि अग्नि का प्रतिपादक ग्रन्थ। इसकी प्राचीनता एवं मौलिकता पर विद्वानों में मतभेद है, क्योंकि कात्यायन श्रौतसूत्र का इस पर पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। यह श्रौतसूत्र गोपथ ब्राह्मण के अंशों की व्याख्या प्रस्तुत करता है।

कौशिक गृह्यसूत्र- यह अथर्ववेद का एकमात्र उपलब्ध गृह्यसूत्र है। इस पर हारित एवं केशव की व्याख्यायें भी उपलब्ध हैं। इस ग्रन्थ में भारत की प्राचीन यातुविद्या का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। ऐहलौकिक अभ्युदय के लिये क्रिय मान अनुष्ठानों की इतिकर्तव्यता का ज्ञान कराना कौशिक गृह्यसूत्र का मुख्य प्रतिपाद्य है। आयुर्वेद शास्त्र से सम्बद्ध अनेक तत्त्वों की व्याख्या की दृष्टि से यह ग्रन्थ वैद्यों के लिए परम उपयोगी है।

धर्मसूत्रों का प्रतिपाद्य:

धर्मसूत्रों का स्थान वेदांग साहित्य में कल्पसूत्रों से भी महत्त्वपूर्ण है। चारों वर्ण एवम् आश्रमों के कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म की प्रबल मीमांसा करना धर्मसूत्रों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय रहा है। राजधर्म एवं राजा के कर्त्तव्य प्रजा के अधिकारानधिकारों की चर्चा भी इनमें विशेष रूप से की गई है। पुत्रों के बीच उत्तराधिकार स्वरूप सम्पत्ति की विभाजनप्रणाली, स्त्री-शिक्षा, नियोगनियम तथा स्त्रियों के नित्य-नैमित्तिक कर्म, गृहस्थ पुरुष की विशिष्ट दिनचर्या का उल्लेख करना धर्मसूत्रों का प्रधान उद्देश्य है। यही परम्परा आगे बढ़कर धर्मशास्त्रों के विकास में सहायक दिखाई देती है।

प्रमुख धर्मसूत्रों का विवरण:

धर्मसूत्रों में सबसे प्राचीन गौतम धर्मसूत्र है, जो आचार्य कुमारिलभट्ट के मतानुसार सामवेद से सम्बन्धित है। इसका काल विद्वानों ने 400 ई. पू. से लेकर 600 ई. पू. तक निर्धारित किया है। इस सूत्र में वर्णधर्म, राजधर्म, प्रायश्चित्त आदि का वर्णन किया गया है। याज्ञवल्क्य, कुमारिल, मेधातिथि तथा शंकराचार्य ने अपने ग्रन्थों में गौतम धर्मसूत्र का स्मरण किया है। इससे इसकी प्राचीनता तथा उपादेयता सिद्ध होती है।

आचार्य बौधायन द्वारा प्रणीत बौधायन धर्मसूत्र भी एक महत्त्वपूर्ण प्राचीन कल्प ग्रन्थ है। इस सूत्र की भाषा का आचार्य पाणिनि द्वारा प्रयुक्त भाषा से पार्थक्य है। अत: अनुसंधाताओं ने

बौधायन धर्मसूत्र का काल ई. पू. 500–200 ई. पू. तक निर्धारित किया है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र अन्य उपलब्ध महत्त्वपूर्ण कल्पग्रन्थ है। इसकी भाषा परिमार्जित है तथा इसमें सैद्धान्तिक गंभीर मीमांसा उपलब्ध है। इसका काल 300–600 ई. पू. निर्धारित किया गया है।

हिरण्यकेशिधर्मसूत्र ऋग्वेद के साथ सम्बन्धित है। वशिष्ट धर्मसूत्र एक अन्य उपलब्ध सूत्रग्रन्थ है, जिसका समय 300 ई. पू. से 100 ई. पू. तक निर्धारित है। विष्णुधर्मसूत्र कौषीतकीय शाखा से सम्बद्ध है। शंखधर्मसूत्र वाजसनेय शाखा से सम्बद्ध है। इनमें भी धर्म के विविध अंगों की विश्लेषणात्मक व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

प्रमुख शुल्बसूत्र:-

शुल्बसूत्रों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय यज्ञवेदि के निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन करना है। भारत की प्राचीन गणितविद्या तथा ज्योतिषशास्त्र का प्रतिपादक होने से इन सूत्रों का वैज्ञानिक महत्त्व है। आचार्य कात्यायन द्वारा रचित शुल्बसूत्र प्रकाशित रूप में अध्येताओं को प्राप्त होता है। यह सात कण्डिकाओं में विभक्त है, जिसमें चतस्र क्षेत्र में वेदिरचना तथा इष्टिका चिति आदि की मीमांसा की गई है।

संक्षेप से लिखा जा सकता है कि उपलब्ध कल्पसाहित्य अभी पूर्णरूप से अनुसन्धान का विषय नहीं बना है। कतिपय धर्मसूत्रों पर विद्वानों ने अन्वेषण किया है। यदि सम्पूर्ण कल्पसाहित्य पर वैज्ञानिक दृष्टि से अनुसंधान किया जाय और अनुपलब्ध कल्पसाहित्य को प्रकाश में लाया जाय, तो उनमें से अनेक परिप्कृत शोध विषयक ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं पर यह खेद का विषय है कि आज स्वतन्त्र भारत में इन गम्भीर विषयों का पठन–पाठन या इन पर अनुसंधान करना तो दूर की बात है आज तो संस्कृत पर ही कुठाराघात किया जा रहा है। प्रारम्भिक कक्षाओं से संस्कृत को हटाना इस बात का प्रमाण है।

– संस्कृत विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

मानसिक स्वास्थ्य का साधन योग

–डॉ. जीवन आशा

भारतीय दर्शन के छः विभागों में योग भारत की विश्व को एक महादेन है। योग संसार की अन्य विचारधाराओं से भिन्न है क्योंकि यह क्रियात्मक है। योग अपने आप में एक विज्ञान है। भारतीय संस्कृति में रुचि रखने वाले योग को बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं क्योंकि यह आध्यात्मिक चमत्कारों से पूर्ण है। योग द्वारा सांसारिक संघर्षों से व्यथित मनुष्य अन्तर्मुखी होकर आत्मा के निकट बैठता है, तो उसे असीम शान्ति का अनुभव होता है। जिस दशा में मन के सहित पंच ज्ञानेन्द्रियां संयम द्वारा स्थित हो जाती हैं और बुद्धि निश्चल हो जाती है। उस दशा का नाम योग है। उपनिषदों[1] का उद्देश्य अध्यात्म तथा भौतिकता का ज्ञान कराते हुए शान्ति और सुख की प्राप्ति कराना रहा है। जीवन में प्रत्यक्ष सुख और शान्ति के लिए उपनिषद् में वर्णित पारलौकिक ज्ञान का अत्यधिक महत्त्व है। पारलौकिक ज्ञान ही जीवन का चरम लक्ष्य है। सभी धर्मों का विस्तार इस उद्देश्य के लिए समर्पित है। पारलौकिक ज्ञान अथवा आत्मा अष्टांग योग यद्यपि कर्म योग, भक्ति योग सभी की अपने-अपने स्थान पर महत्ता है, परन्तु अष्टांग योग एक विशिष्ट स्थान लिए हुए है।

उपनिषदों में वर्णित योग का उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति के साथ-साथ मानव को जीवन-मूल्यों से परिचित करवाना है क्योंकि जीवन-मूल्य को समझे और अपनाए बिना आत्म-साक्षात्कार नहीं हो सकता।

उपनिषदों में ब्रह्म, जीव, आत्मा आदि पर विचार करते हुए उच्चतर साधनों की ओर बढ़ने का सन्देश है, इससे जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा होती है। इस सन्दर्भ में योगदर्शन का महत्त्व विशिष्ट है। इनमें योग के अंगों यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि आदि के विवेचन में आचरण की सात्विकता और संयम पर बल दिया गया है। ये मानवीय मूल्यों को प्रतिपादित करने वाले स्पष्ट साधन हैं। सृष्टि के मध्य मानव की श्रेष्ठता का स्वीकार करते हुए[2] इनमें सम्वेदन, और उदात्त अनुभूतियों के प्रति गहरी निष्ठा परिलक्षित होती है। इन यमादि साधनों से व्यक्ति स्वयं पर संयम रखकर अपने को उन्नत तथा सात्विक बनाता हुआ अन्य प्राणियों का भी कल्याण करता है। इससे मानवदृष्टि के विकसित होने का

१. कठोपनिषद्, २-३-१

२. ऐतरेयोपनिषद्, १-२-३

अवकाश मिलता है और समस्त प्राणी- जगत् से तादात्म्य उत्पन्न होकर विश्वबन्धुत्व के भाव का विस्तार होता है[3]।

योग- अष्टांगयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग इत्यादि अनेक प्रकार से माना गया है।

अष्टांग योग:-

योग के प्राथमिक साधनों का विवरण पातञ्जल योगदर्शन में अष्टांगयोग नाम से किया गया है- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि। इनमें से यम, नियम आसन और प्राणायाम हठयोग तथा बाद के चार प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि राजयोग कहलाते हैं। इनके अनुष्ठान से चित्त से अशुद्धता दूर होकर धीरे-धीरे ज्ञान का विकास होता है और विवेकख्याति की प्राप्ति होती है। प्राय: सभी उपनिषदों में उनका यत्रतत्र वर्णन मिलता है।

यम:-

यम पांच प्रकार का है-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। सब कुछ ब्रह्म ही हैं वही प्राप्तव्य है इस भावना से इन्द्रियों का संयम यम है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है कि जिस प्रकार सारथि दुष्ट घोड़े का नियन्त्रण लगाम खींच कर करता है वैसे ही योगी को अप्रमत्त होकर मन को नियन्त्रित करना चाहिए है।

अहिंसा:-

मनसा, वाचा, कर्मणा किसी प्राणी की मन, वचन और कर्म से अहित न सोचना और न करना अहिंसा कहलाती है, जो अन्य यम, नियम आदि की आधारशिला है।

सत्य:-

हित कारक और यथार्थ वचन सत्य कहलाता है ब्रह्म की प्राप्ति सत्य द्वारा ही हो सकती है। 'सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा',[4] परमात्मा स्वयं सत्य स्वरूप है। अत: उसकी प्राप्ति के लिए मनुष्य में भी सत्य की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। देवयान नामक मार्ग भी सत्य से परिपूर्ण है जिससे पूर्ण कामयोगी गमन करते हैं[5]।

अस्तेय:-

चोरी न करना अस्तेय है। वह भी केवल कर्म से ही न साधा जाए अपितु मन से भी किसी वस्तु को लेने की इच्छा न करना अस्तेय है, जिसे दूसरे शब्दों में अस्पृह्य कहा जा सकता है।

ब्रह्मचर्य:-

मन, इन्द्रिय और शरीर द्वारा होने वाले काम-विकास के सर्वथा अभाव का नाम ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य योग का आवश्यक अंग है। ब्रह्मचर्य का अच्छी प्रकार पालन होने पर ही शरीर मन और इन्द्रियों में अत्यन्त सामर्थ्य की प्राप्ति हो जाती है।

---

३. ईशावास्योनिषद्, ६ ४. मुण्डकोपनिषद्, ३-१-५ ५. वही, ३-१-६

अपरिग्रह:-

विषयों में अर्पण, रक्षण, संग, हिंसा आदि दोष देखकर उनको सर्वथा छोड़ ही देना अपरिग्रह है।

नियम:-

नियम से तात्पर्य है, आत्म-संस्कार द्वारा अपनी आदतों पर नियन्त्रण स्थापित करके उन्हें नियमित करना। नियम पांच प्रकार के हैं-शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान। पवित्रता ही शौच है, जो बाह्य तथा आभ्यन्तर रूप से दो प्रकार की होती है। बाह्य शौच-स्थूल शरीर को मृतिका, जल तथा सात्विक भाग आदि से तथा आभ्यन्तर-शौच चित्त के काम, क्रोध, लोभ,मोह मद, मत्सर आदि विकारों को दूर करके मैत्री और करुणा आदि हैं। प्रारब्धवश जो उपलब्ध है उससे अधिक इच्छा न करना सन्तोष है। सुख-दुख शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों को द्वेष रहित होकर सहन करना तप है। वरुण भगवान् अपने पुत्र भृगु को तप के द्वारा ही ब्रह्म को जानने का उपदेश देते हैं-

तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व, इस उपदेश को धारण कर पुत्र भृगु तपस्या द्वारा आनन्द रूप ब्रह्म को जान पाते हैं। तप: तप्त्वा आनन्द ब्रह्मेति व्यजानात्[६]। वस्तुत: तप के अनुष्ठान से ही पापों का नाश होने पर अष्ट सिद्धियों की प्राप्ति हो सकती है। कार्येन्द्रियसिद्धिक्षयात्तपस:[७] सम्पूर्ण कर्मों को ईश्वर के अर्पण करना ईश्वर प्रणिधान है। ईश्वरार्पण करने से व्यक्ति की वासना धीरे-धीरे नष्ट होने लगती है तथा वह परमात्मा-निष्ठ होने लगता है।

आसन:-

अष्टांगयोग का तृतीय अंग आसन है। साधक साधना करने हेतु जिस ढंग से सुखपूर्वक स्थिरता से बैठ सके वही आसन है। जिनके द्वारा शरीर और मन दोनों पर नियन्त्रण करना सम्भव होता है, जो पद्मासन, वीरासन, मयूरासन आदि भेद से अनेक है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में वक्ष, शिरा, ग्रीवा को उन्नत और सम करके आसन लगाने से आत्मतत्त्व की सिद्धि की बात कही गई है[८]।

प्राणायाम:-

शास्त्रोक्त विधि से अपने स्वाभाविक श्वास और प्रश्वास को नियन्त्रित करना प्राणायाम कहलाता है। प्राणायाम के द्वारा प्राणजय होता है। जिसके द्वारा मनोजय अनायास सिद्ध होता जाता है श्वेताश्वतरोपनिषद् में प्राणों का आयाम करके तत्परता के साथ शुद्ध प्राणवायु हो जाने पर नासिका से उच्छवास लेने का वर्णन है[९]।

प्रत्याहार:-

अष्टांगयोग का पंचम अंग प्रत्याहार है।

---

६. तैत्तिरीयोपनिषद्.५.६ अनुवाक

७. योगदर्शन, २.४३

८. श्वेत०, २.८.९

९. वही २-९

श्रोत्रादि इन्द्रियों को अपने रागद्वेषात्मक स्वाभाविक विषय से विवेक द्वारा निवृत्त करके चित्त के अधीन करना प्रत्याहार कहलाता है[१०]। इसके अभ्यास से मन निर्मल तथा शरीर रोग रहित तथा इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार हो जाता है[११]।

धारणा- आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधि-भौतिक भेद से तीन प्रकार के देशों में से किसी योग्य ध्येय के विषय में चित्त को एकाग्र करना धारणा कहलाता है।

ध्यान ब्रह्म की ओर चित्तवृत्ति का तैलधारा-वत् अखण्ड प्रवाह तथा मन का निर्विषय होना ध्यान कहलाता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में ध्यान रूप मन्थन से तथा ओंकार के जप द्वारा परमात्म रूप अग्नि को देखने का वर्णन मिलता है[१२]। विशुद्ध अन्तः करण से ध्यान करने से ही ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है[१३]। ध्यान द्वारा समस्त पाप राशि नष्ट हो जाती है।

ध्यान के लिए आवश्यक है कि जहाँ ध्यान लगाया जाय वहं स्थान शान्त व बाधारहित हो तभी ध्यान रूपी योग सिद्ध हो सकता है इसीलिए श्वेत० में कहा गया है कि-"सम और शुचि, कंकड़ रहित, आग और बालू से रहित, शान्त तथा मन के अनुकूल, चक्षु को सुख देने वाला तथा गुहा- सा एकान्त स्थान चुनकर ध्यान लगाना चाहिए"[१४]। आवश्यकता नहीं कि केवल ईश्वर प्राप्ति के लिए ही ध्यान आदि किया जाए। किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए ध्यान, प्राणायाम और धारणा की आवश्यकता होती है।

समाधि:-

ध्येय वस्तु के स्वरूप को प्राप्त हुआ मन अपने ध्यान स्वरूप का परित्याग करके और संकल्प विकल्प से रहित होकर केवल ध्येय वस्तु के स्वरूप में स्थित हो जाता है वह अवस्था ही समाधि है। जो सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात के भेद से दो प्रकार की होती है। द्वैत में अद्वैत की प्रतीति सम्प्रज्ञात समाधि है। असम्प्रज्ञात में ज्ञाता ज्ञान आदि का भेद नहीं रहता जैसे लवण जल में मिलकर जलस्वरूप हो जाता है वैसे ही चित्तवृत्ति ब्रह्म में लीन हो जाने से ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ऐसी प्रतीत होती है।

इस अष्टांग योग के अतिरिक्त कर्मयोग तथा ज्ञानयोग भी व्यक्ति को सम्मार्ग के लिए प्रेरित कर उसके विकास में सहायक होते हैं।

कर्मयोग:-

कर्म को कर्त्तव्य बुद्धि से करना ही कर्मयोग है। सिद्धि और असिद्धि में सम रहना भी कर्मयोग है तथा कर्मों में कुशलता भी कर्मयोग है। यह कौशल क्या है? कौशल है कर्मफल में अनासक्ति

१०. योगदर्शन, २.५५ ११. वही, २.५६ १२. श्वेत०, १.१४.२.
१३. मुण्डको०, ३.२.६ १४. श्वेता०, २.१.

और भक्ति, जिनसे बन्धन कारक कर्म मोक्षदायक कर्म हो जाता है और कर्म ज्ञान बन जाता है।

कर्म-योग वह है जहां न अपने स्वार्थ की अथवा 'पर' के स्वार्थ साधन की इच्छा हो, अपितु सामान्य रूप से सर्वजन के हितावह कार्य फल-कामना रहित करे; वह कर्मयोग है। इसी कर्मयोग की कोटि में नि:स्वार्थ भाव से की गई सभी प्रकार की सेवाओं का समावेश हो जाता है। किसी भूखे के लिए भोजन, गरीब के लिए वस्त्र की व्यवस्था करना, बीमार व्यक्ति की चिकित्सा के लिए औषधि की व्यवस्था, धर्म शाला का निर्माण इत्यादि सब लोक और समाज के कल्याण कारक कार्यों के द्वारा विश्वात्मा की ही सेवा होती है और उसके द्वारा उपासक के आत्म बल में अवश्य वृद्धि होती है। ये सब कार्य कर्मयोग की कोटि में माने जाते हैं।

भारतीय संस्कृति में कार्म के महत्त्व पर बल दिया गया है। भौतिक और आध्यात्मिक द्विविध जीवन-सिद्धि एवं श्रेय कल्याण के लिए कर्म को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। वेद की यह कर्म-भावना प्रत्येक व्यक्ति और समस्त मानवसमाज को कर्त्तव्य निष्ठ होने तथा दायित्व वहन करने की ओर प्रवृत्त करती है।

वेदों में शतायुष, सुखमय एवं आनन्दप्रद जीवन की प्राप्ति के लिए उत्कट इच्छा[१५] व्यक्त की गई है किन्तु साथ ही यह भी कामना की गई है कि मनुष्य अपने कर्त्तव्य कर्मों को करता हुआ अपनी पूर्णायु पर्यन्त जीने की इच्छा करे[१६]। उसका कल्याण इसी में है कि वह कर्मों से विमुख न हो[१७]।

वैदिक-संस्कृति में श्रम-शील और कर्म-निष्ठ जीवन को बड़ा महत्त्व दिया गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि मनुष्य अपने लक्ष्य को श्रम और तप से ही प्राप्त कर सकता है[१८]। वहीं एक अन्य मन्त्र में यहां तक कहा गया है कि जो मनुष्य श्रम नहीं कर सकता, देवता भी उस से मित्रता नहीं करते अर्थात् उसके अनुकूल नहीं होते। अथर्ववेद के एक मंत्र में श्रम को राष्ट्रीय उन्नति से स्थापित करते हुए लिखा गया है कि तप:पूत श्रमशीलता न केवल आत्मोन्नति के लिए अपितु राष्ट्रीय उत्थान के लिए भी सहायक है[१९]।

अथर्ववेद में कहा गया है कि हमारे दाहिने हाथ में पुरुषार्थ और बायें हाथ में सफलता है[२०]। वही पर एक स्थान में कर्म[२१] के अंगों अर्थात् साधनों का भी उल्लेख है, जिनके नाम हैं- उत्साह, सावधानी, स्फूर्ति, रक्षण और दक्षता। कर्म में सफलता अर्जित करने के लिए जीवन तथा व्यवहार में इन साधनों का अभ्यास होना चाहिए।

१५. यजु०, २५.२२ १६. वही, ४०.२ १७. वही, ४०.४
१८. ऋ०, ५.४४.८ १९. अथर्व, ११.५.९ २०. वही, ७.५२.८
२१. वही, ८.१

किसी भी कार्य को करने से पहले उसके लिए मन में दृढ़ संकल्प होना चाहिए कि मैं जिस कार्य का मन में ध्यान करूँगा, वह अवश्य सिद्ध होगा[22]। उपनिषदों में भी कर्म की श्रेष्ठता को स्वीकार किया गया है, जो जैसे करता है उसको वैसा ही फल मिलता है[23]। उपनिषदों के आत्मद्रष्टा ऋषियों ने जीवन में सक्रियता तथा कर्त्तव्य-निष्ठा को बड़ा महत्त्व दिया है।

ज्ञानयोगः-

उपनिषदों की दृष्टि में श्रेय अर्थ में चित्त का लगे रहना ज्ञानयोग है। वस्तुतः ज्ञान-योग मोक्ष का साक्षात् कारण है। जब तक योगशास्त्र के अनुसार आचरण करके व्यक्ति योगी नहीं हो जाता, तब तक उसके पास ज्ञान आ ही नहीं पाता। सभी उपनिषदों में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से योग के उपर्युक्त विभिन्न प्रकारों का किसी न किसी रूप में वर्णन करते हुए इनकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। यद्यपि योग का लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति बताया गया है; तथापि यह निश्चित है कि मोक्ष के अतिरिक्त भी योग व्यक्ति के जीवन में अत्यन्त उपयोगी है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा गया है कि योग द्वारा अग्निमय शरीर प्राप्त करने वाले व्यक्ति को कोई रोग नहीं होता, बुढ़ापा भी नहीं आता और न मृत्यु होती है। हर्ष और शोक को भी व्यक्ति पार कर लेता है, नचिकेता को यमराज द्वारा यही शिक्षा दी जाती है- अष्टांग-योग का आश्रय लेने से इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट के निवारण का कथन कठोपनिषद् में किया गया है-

अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ।

उपर्युक्त सभी यौगिक क्रियाओं में मन की स्थितरता ही पूर्ण रूपेण अपेक्षित है, अथवा कहा जा सकता है कि मन को नियंत्रित करने पर ही ये सभी यौगिक-क्रियायें सफल होकर लक्ष्य की प्राप्ति कराती हैं। ये सभी अष्टांगयोग और इनके अंग, उपांग कर्मशीलता, अनासक्ति तथा आत्मनियंत्रण मन को निर्मल तथा विशुद्ध करते हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् में ध्यान और प्राण-वायु के विधिपूर्वक निरोध द्वारा मन की विशुद्धता की भी बात कही गई है (२.६) और सबसे पहले मन और बुद्धि को नियंत्रित करने की प्रार्थना की गई है (२.१) मानवीय मूल्य करुणा, ममता, दया, क्षमा, मंत्र आदि भाव मनुष्य में भी विकसित हो सकते हैं, जब उसके मन से काम, क्रोध, लोभ, आसक्ति आदि विकार दूर हो जायं। आदिगुरु शंकराचार्य ने इस ओर संकेत करते हुए स्पष्ट किया कि जगत् को किसने जीता? (उत्तर है) जिसने अपने मन को जीत लिया है। स्पष्ट है कि मन अत्यन्त चंचल है, बड़ा दृढ़ है अर्थात् जिधर लग गया वहां से हटाना उसको बड़ा कठिन होता है। अतः उसको रोकना कठिन है (गीता ६, ३४)। केवल इसकी दिशा को परिवर्तित किया

२२. गोपथ ब्राह्मण, १.१.१

२३. बृहदारण्यकोपनिषद्, ४.४.५

जा सकता है। अत: मन की गति को केवल अभ्यास और वैराग्य द्वारा ही नियंत्रित किया जा सकता है।

औद्योगिक प्रगति और विज्ञान के नवीन आविष्कारों ने समाज में जिस भौतिक-दृष्टिकोण को विकसित किया उससे तर्क और बुद्धि का महत्त्व तो बढ़ा है, परन्तु मानव का आन्तरिक क्षय होता जा रहा है। बुद्धिवादिता मानव को जड़यंत्र सा बनाती जा रही है। अनैतिकता का विस्तार, नई-नई भौतिकतावादी विचारधारायें, मानवीय मूल्यों का तिरस्कार, परम्पराओं का खण्डन, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, विकृत और उन्मुक्त यौनाचार, जातिवाद आदि समस्याओं से मानवता ग्रसित होती जा रही है। मनुष्यजाति का कोई भी वर्ग आज संतुष्ट और सुखी नहीं है। मानव-जीवन की सहज संवेदनायें और उदात्त-भावनायें नष्ट होती जा रही हैं। इसमें किसी एक वर्ग का दोष नहीं सबकुछ समयानुसार स्वत: ही विकसित हो रहा है। इसलिए औपनिषदिक अष्टांग योग की आज अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि इसके आचरण द्वारा ही व्यक्ति परस्पर प्रेम और सहयोग बढाकर संसार से द्वेष, हिंसा और अनाचार आदि को दूर कर सकता है। योग-मार्ग पर चलने वाला अपने लिये तो नि:श्रेयस् का द्वार खोलता ही है। इसके अतिरिक्त अपने तप: पूत आचरण के प्रकाश से मानव-समाज का भी अभ्युदय करने में समर्थ होता है। इसलिए आज योग विश्वव्यापी होता जा रहा है। जो कि मानवमात्र के लिए एक अच्छी पहल है।

-डी. ए. वी. कॉलेज, जालन्धर शहर।

नया संकल्प

-श्री बाबूलाल शर्मा प्रेम

सोये रहे अभी तक हम
अब और न सोयेंगे,
जीवन का अनमोल समय
अब और न खोयेंगे।
बीत गयी जो बात
न उसकी चिन्ता करनी है
नयी उमंगों से प्रभात की
झोली भरनी है
सोच-सोच बीती बातें को
और न रोयेंगे।
ऊंची नीची राहें चलना
आगे बढ़ना है,
जीवन में कुछ करना है
कुछ लिखना-पढ़ना है
असमंजस कर दूर
नया विश्वास संजोयेंगे।
सोये रहे अभी तक हम
अब और न सोयेंगे।

-इंद्रपुरी, पो. मानसनगर, लखनऊ-२३

स्वामी विवेकानन्द के आर्थिक विचार

–प्रो. (डॉ.) जमना लाल बायत्ती

स्वामी विवेकानन्द केवल भारत के ही नही वरन विश्व के महान् विचारक हैं, विभूति हैं। विश्व की परिवर्तनशील परिस्थितियों में भी उनकी विचारधारा अत्यन्त समीचीन परिलक्षित होती है। विभिन्न क्षेत्रों के ज्ञान और विचारों की स्पष्टता एवं समकालीन परिस्थितियों की विशिष्ट जानकारी एवं गहरी समझ ने उन्हें महान् भविष्य- द्रष्टा बना दिया। पश्चिमी देशों की यात्रा से वहां की समग्र संस्कृतियों का आत्मीकरण करते हुए अपनी विचारधारा को पुष्ट कर भारतीय परिवेश के अनुकूल अपने देश के विकास का चित्र प्रस्तुत किया।

विवेकानन्द कालीन अर्थव्यवस्था–

उनके समय भारत की अर्थव्यवस्था अत्यन्त दयनीय थी। यह परिस्थिति उस समय के आंकड़ों से स्पष्ट परिलक्षित होती हैं। दादा भाई नौरोजी के अनुसार (1825-1917) के अनुसार भारत के प्रति व्यक्ति की आय मात्र 20 रूपये थी जो दुनियां के सभ्य राष्ट्रों में सबसे कम थी। अंग्रेजी साम्राज्य की प्रगति एवं सम्पन्नता एवं शानदार उपलब्धियों के लम्बे इतिहास ने भारत को एक गरीब राष्ट्र बना दिया। भारत के कृषि और औद्योगिक क्षेत्रों को नष्ट कर दिया। मैकाले की शिक्षापद्धति ने भारत की प्राचीन वैदिक एवं चरित्रप्रधान शिक्षा-पद्धति को तहस-नहस कर दिया, जिसने भारत की अर्थव्यवस्था को झकझोर कर रख दिया।

आर्थिक समस्याओं पर स्वामी जी की अन्तर्दृष्टि–

स्वामी जी को भारतीय आर्थिक स्थिति की प्रथमदृष्ट्या जानकारी थी। अपने व्यक्तिगत अनुभव एवं विचार-विमर्श के माध्यम से विभिन्न राष्ट्रों की आर्थिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करके अन्ताराष्ट्रीय आर्थिक स्थिति को बड़ी गहराई से समझा था। यद्यपि उन्होंने औपचारिक रूप से किसी महाविद्यालय में अर्थशास्त्र का अध्ययन नहीं किया था तथापि अपने स्तर पर उन्होंने जॉन स्टुअर्ट मिल जैसे महान् राजनीतिक अर्थशास्त्री की कृतियों को पढ़ा, तथा उसका गहराई से अध्ययन किया। अर्थशास्त्र के विस्तृत ज्ञान का उपयोग उन्होंने अमेरिकन समाज विज्ञान संस्थान में ''भारत की चाँदी

का उपयोग'' विषय पर अपना विस्तृत व्याख्यान देने में किया।

स्वामी जी का बहुआयामी योगदान-

स्वामी जी ने विश्व एवं भारतीय अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए कई नवीनतम एवं मौलिक विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने पश्चिम की भौतिक- प्रगति एवं पूर्व की आध्यात्मिक विचारधारा को एकीकृत रूप देकर समृद्धि और समग्र विकास पर जोर दिया। जब पश्चिमी राष्ट्र भौतिक सुख-सम्पदा के पीछे भाग रहे थे तब स्वामी जी ने उन्हें जीवन-संबंधी आध्यात्मिक सिद्धान्तों का महत्त्व समझाया। इस समझ के बाद पाश्चात्य दुनियाँ की भौतिक व्याधियां, मुद्रा की भूख, विलासितापूर्ण जीवन की जरूरतें कम होने लगी। पश्चिमी अर्थव्यवस्था में भौतिकवाद प्रमुख रहा परन्तु अन्ततः यह विचारधारा गलत साबित हुई। धीरे-धीरे यह विचारधारा बलवती होने लगी कि जीवन एक जटिल प्रक्रिया है जिसे केवल भौतिकता के सहारे जीवित नहीं रखा जा सकता है।

स्वामीजी की व्यवस्था में या उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों में विभिन्न आयाम निहित हैं। उन्होंने भौतिक समृद्धि के साथ-साथ आध्यात्मिक विकास पर भी अत्यधिक जोर दिया। उन्होंने समाज के सभी वर्गों के लिए समग्र विकास की आवाज बुलन्द की। समाज के प्रत्येक व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास ही उनकी आर्थिक नीति का मूल आधार था।

शोषण के कारण भारत का पतन-

स्वामीजी को भारतीय एवं पश्चिमी देशों की आर्थिक स्थिति की गहन एवं पूर्ण जानकारी थी। अठारहवीं शताब्दी में भारतीय आर्थिक स्थिति अच्छी थी, परन्तु यूरोपीय राष्ट्रों ने इनका शोषण किया एवं भारतीय स्रोतों के शोषण के कारण ही वे धनी बन गये। भारतीय व्यापार एवं करप्रणाली अंग्रेजो के अधिकार में होने से भारतीय अपना शोषण समझ नहीं पाये। गहन अनुसंधान ने अध्ययन एवं पाश्चात्य इतिहासकारों ने भारतीय स्थिति का भ्रामक एवं तथ्यों से परे चित्र प्रस्तुत किया।

आत्मनिर्भरता का पाठ-

उस समय दादा भाई नौरोजी और रमेश दत्त जैसे महान् विचारकों ने भारत के शोषण का भारी विरोध किया एवं तत्संबंधी तथ्य भी प्रस्तुत किए। अन्य राष्ट्रों की आर्थिक प्रगति से प्रभावित होकर स्वामी विवेकानन्द ने आर्थिक नीतियों पर प्रभावी और क्रान्तिकारी सुझाव दिए। वे पाश्चात्य राष्ट्रों की बढती हुई आर्थिक समृद्धि एवं भारत की आर्थिक

नीतियों के प्रति अज्ञानता को लेकर दुखी थे। इसीलिए उन्होंने कहा कि विदेशों की आर्थिक स्थिति एवं समृद्धि सम्पन्नता के सामने भारतीयों की स्थिति कुत्तों जैसी थी। भारतीय कच्चे माल से विदेशी व्यापारी सोना कमा रहे हैं और भारतियों के स्थिति भारवाहक गधों से ज्यादा अच्छी नहीं है और विदेशी व्यापारी भारतीय कच्चे माल का उपयोग करके सम्पन्न बन रहे हैं। अन्य बीसों प्रकार से लाभ उठा रहे हैं।

समग्र आर्थिक विकास के स्वप्नद्रष्टा-

स्वामी विवेकानन्द के अर्थशास्त्रसंबंधी विचारों के अनुसार देश के हर वर्ग के लोगों का सम्पूर्ण सभी क्षेत्रों में विकास होना चाहिए। इस प्रक्रिया को उन्होंने गहन अर्थशास्त्र का नाम दिया। कई पाठक इसे सूक्ष्म अर्थशास्त्र भी कहते हैं। राष्ट्र की गरीबी हटाना उनकी सर्वोपरि प्राथमिकता थी। वे प्रत्येक वर्ग के हर सदस्य की प्रगति पर बल देते थे और हर वर्ग की गरीबी हटाना उनका ध्येय था। उन्होंने हर वर्ग की महिलाओं की शिक्षा और आर्थिक विकास पर-बल दिया। समाज के आधे हिस्से के योगदान के बिना वे प्रगति या आर्थिक विकास को अपूर्ण मानते थे।

भारतीय कृषि की श्रेष्ठता-

भारत राष्ट्र एक कृषि-प्रधान देश है। स्वामीजी को भारत के लिए कृषि के महत्व का, जीवन यापन में कृषि के स्थान का पूर्ण एवं ठोस ज्ञान था पर उन्होंने भारतीय कृषि-सुधारों के लिए कृषि के आधुनिक तरीकों के उपयोग पर जोर दिया और साथ ही लघु एवं सीमान्त कृषक भी उनके विचारक्षेत्र से पृथक् नहीं हुए, उन्होंने उनकी दशा सुधारने के लिए स्वयं उन्हीं को प्रोत्साहन देना जरूरी समझा। आधुनिक भारत में स्वामी जी के ये विचार पूर्णतः समयानुकूल लगते हैं क्योंकि आज भी साठ प्रतिशत भारतीयों का जीवनयापन प्रत्यक्षतः कृषि पर ही निर्भर है। आज हम देख रहे हैं कि कृषि की उपेक्षा के कारण किसान आत्महत्या कर रहे हैं फिर चाहे वे किसी एक क्षेत्रविशेष के ही क्यों न हों। युवावर्ग कृषि- संबंधी कार्यों के प्रति उदासीन होने से मानवता के छठे भाग का भरण-पोषण करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य हैं।

औद्योगिकीकरण-

स्वामीजी ने आर्थिक विकास के लिए औद्योगिकीकरण की मुक्तहृदय से वकालत की थी और उत्साही उद्यमियों के प्रोत्साहन को अत्यधिक महत्व दिया। वे औद्योगिकीकरण की प्रकृति से भली-भाँति परिचित थे। उन्होंने दैनिक आवश्यकताओं

की वस्तुओं के निर्माण करने और विदेशों पर निर्भरता को घटाने पर बल दिया। अपनी शिकागो यात्रा के समय उन्होंने जमशेदजी टाटा से वायुयान में इस संबंध में विस्तृत चर्चा की वायुयान में उनकी यह वार्ता औद्योगिक विकास पर ही केन्द्रित रही। उन्होंने विभिन्न वस्तुओं के आयात की अपेक्षा घरेलू उत्पादन की वृद्धि पर बल दिया।

नये उद्योगपतियों को प्रोत्साहन तथा पारम्परिक उद्यागों का विकास-

स्वामी विवेकानन्द जानते थे कि उद्योगपतियों को प्रोत्साहन करने पर ही यह समस्या हल हो सकती है। अत: सर्वप्रथम उन्होंने इस ओर ही बल दिया क्योंकि हर स्तर पर नियोजन व्यवस्था का सुधार प्रथम स्थान पर आवश्यक है। वे ग्रामीणों द्वारा कलात्मक वस्तुओं के निर्माण पर सकारात्मक ढंग से सोचते थे। ग्रामीणों द्वारा निर्मित इन वस्तुओं के विपणन पर उन्होंने क्रांतिकारी व्यवस्था का समर्थन किया। कुटीर-उद्योगों के विकास पर भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए और उन्होंने बिना किसी प्रकार का विचार किए बड़े उद्योगों तथा बृहद्- स्तरीय औद्योगिकीकरण की हानियों से भारतीय नागरिकों को परिचित कराया।

स्वामीजी का विज्ञान तथा तकनीकी विकास पर बल-

अपने समय की भारतीय समस्याओं के निराकरण के लिए उन्होंने तकनीक विकास का न केवल समर्थन किया बल्कि पूरे साहस एवं जानकारी के साथ बल दिया। उनके सुझावों को महत्त्व देते हुए जमशेदजी टाटा ने कई बड़े उद्योगों की स्थापना की तथा प्रतिष्ठित भारतीय विज्ञान संस्थान (इंडियन इंस्टीट्युट ऑफ साइन्स) की स्थापना की। वे भारतीयों को पाश्चात्य वैज्ञानिक प्रगति की जानकारी देना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने कहा कि "भारतीयों के वैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर उत्पादन बढ़ाने की दिशा में सक्रिय होना चाहिए"। भारतीयों को विदेशियों की दासता से मुक्त होने के लिए प्रेरित किया।

स्वदेशी तरीके से भारत का विकास करने पर बल-

स्वामीजी ने जापान का उदाहरण देकर भारतवासियों को भारतीय तरीकों से विकास करने पर बल दिया। उन्होंने कहा कि जापान ने पाश्चात्य वैज्ञानिक प्रगति का लाभ उठाया लेकिन जापान के निवासियों ने अपनी जापानियत नहीं छोड़ी। इसी भाँति भारतीयों को भी अपना विकास करते हुए अपनी भारतीयता नहीं खोनी चाहिए अर्थात्

बिना भारतीयता खोये विकास कर सतत आगे बढना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द पहले व्यक्ति थे जिन्होंने गुलाम भारत में भी भारतीय आर्थिक विकास का आदर्श प्रस्तुत किया। स्वामी विवेकानन्द के सिद्धान्तों की श्रेष्ठता या महत्व इसी में है कि जो भी उपाय उन्होंने सुझाये वे स्वयं उनके अनुभवों पर आधारित थे। उन्होंने जन सामान्य से जुड़कर ही भारतीय आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, औद्योगिक विकास की बात को आगे बढ़ाया। पर इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण कि वे आध्यात्मिक विकास नहीं भूले। वे भारत की सभी प्रकार की स्थितियों से भली- भांति परिचित थे। संक्षेप में उन्हें भारतीय-दृष्टि से व्यावहारिक अर्थशास्त्री कहा जा सकता है।

जगद्गुरु स्वामी विवेकानन्द-

विश्व में पश्चिमी देशों के उदय होने के बाद से 2008 तक पश्चिमी राष्ट्रों की प्रगति से यह स्पष्ट होने लगा है कि पश्चिमी आर्थिक आदर्श, रीति- नीति से हमारी आर्थिक समस्याओं जो राष्ट्रीय स्वरूप की भी हो सकती हैं, का समाधान नहीं हो सकता। कई पश्चिमी अध्येता व विचारक स्वीकार करते हैं कि भारतीय तरीकों से ही भारयीय समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। स्वामी जी के अनुसार भारतीय साधनों व तरीकों से ही भारत का आर्थिक विकास संभव है। निश्चय ही भारत में जगद्गुरु बनने की क्षमता एवं योग्यता है एवं राष्ट्रीय केन्द्रीत नीतियों से ही भारत का सर्वांगीण विकास संभव है। स्वामी विवेकानन्द ने पूर्ण विश्वास एवं दृढ़तापूर्वक यह कथन प्रतिपादित किया है कि भारत की दरिद्रता समाप्त करने तथा सम्पन्न एवं खुशहाल राष्ट्र बनाने के लिए भारतीय दार्शनिक विचारधारा, कठोर परिश्रम, भारतीय कार्यपद्धति एवं सतत कर्मशील बने रहकर ही एक सम्पन्न एवं खुशहाल राष्ट्र बनाया जा सकता है। यदि आज की सरकार इस ओर अधिकाधिक जोर दे और सुदूर घाटियों में विद्यमान ग्रामीणों के लिए कुटीर जैसे उद्योग की व्यवस्था करे तो इससे दो लाभ हो सकते हैं। प्रथम उन्हें अपने ही स्थान पर रोजगार मिलेगा दूसरा ग्रामों से शहर की ओर हो रहे जनसामान्य के पलायन से राहत मिलेगी।

-बी-186, आर. के. कॉलोनी, भीलवाड़ा (राजस्थान) 311001

भक्तिकाल और कृष्णकाव्य की नारी

–डॉ. साधना

भक्तिकाल हिन्दी–साहित्य का स्वर्ण–युग माना जाता है। तत्कालीन साहित्य ने हिन्दी की जो श्रीवृद्धि की है; वह साहित्य के लिये अनुपम एवं गौरवमयी देन है। ''भक्तिकाल में दो काव्य–धाराओं का जन्म हुआ–निर्गुण भक्ति काव्यधारा एवं सगुण भक्ति काव्य–धारा। निर्गुण भक्ति–धारा के अन्तर्गत सन्त एवं सूफी कवियों के काव्य के दर्शन होते हैं, जिनमें सन्तों के भक्तिप्रधान दृष्टिकोण में नारी को आध्यात्मिक मार्ग की बाधा के रूप में देखा गया और उसकी भर्त्सना करके सदैव उससे दूर रहने की भावना को प्रधानता दी है। भक्तिकाल की निर्गुण धारा के कवियों की दार्शनिक एवं आध्यात्मिक प्रवृत्ति के कारण ईश्वर–प्राप्ति के मार्ग में इहलोक के बंधनों को त्याज्य ही समझा गया। सगुण–भक्ति–धारा दो रूपों में प्रचलित हुई– रामभक्ति शाखा एवं कृष्णभक्ति शाखा। रामभक्ति के सर्वश्रेष्ठ कवि भक्त तुलसीदास हुए हैं। जिनका रामचरितमानस सबसे श्रेष्ठ एवं सर्वप्रकारेण पूज्य ग्रन्थ है।

कृष्णभक्ति शाखा– कृष्णभक्ति भी रामभक्ति के समान ही अतिप्राचीनकाल से प्रारम्भ हो चुकी थी, परन्तु सांगोपांग रूप में कृष्णभक्ति का स्वरूप–निरूपण भागवत से ही माना जाता है। कृष्णभक्ति–धारा का सूत्रपात हिन्दी में पन्द्रहवीं–सोलहवीं शताब्दी में हुआ। इसका प्रारम्भ पुष्टिमार्ग के आचार्य बल्लभाचार्य जी के शिष्य सूरदास से माना जाता है। ''भागवत पुराण तथा जयदेव के 'गीतगोविन्द' की काव्य–परम्परा से कृष्णभक्ति धारा का प्रचार हुआ। सूरदास के गेय पदों का होना यह निश्चित करता है कि कृष्ण–लीला से सम्बद्ध गेय–पद के साहित्य की उत्स–भूमि पूर्वी भारत ही है। वहीं से चलकर यह प्रथा पश्चिमी भारत में आयी है।''

निम्बार्काचार्य तथा विष्णु स्वामी ने नारी–भावना को प्रधानता देते हुए अपने आराध्य कृष्ण के साथ राधा की उपासना को ग्रहण किया, जिससे सर्वशक्तिमान् के साथ उसकी शक्ति की महत्ता का प्रतिपादन होता है। निम्बार्काचार्य ने अपने 'दशश्लोकी' में श्रीकृष्ण के वामांग से शोभित, सहस्रों सखियों से सेवित श्री राधा देवी की भी स्तुति है। उन्होंने युगल उपासना के साथ भगवान् की प्रेम–शक्ति स्वरूपा राधा की उपासना पर विशेष बल दिया है, जो सकल कामनाओं की पूरक है।

कृष्ण काव्य में राधा–स्तुति के साथ ही नारी के विविध रूपों का चित्रण किया गया है। जैसे–सखी, पत्नी, पुत्री, माता, सास, जेठानी, दूती–रूप आदि। कृष्णकाव्य परम्परा में राधा, देवी, गंगा, जानकी आदि की स्तुति द्वारा नारी–जाति के विशेष गौरवमय रूप का चित्रांकन किया गया है, किन्तु नारी के उस आदर्श रूप को ही मान्यता प्रदान की गयी है जो धर्म–शास्त्रों, ग्रंथों या पुराण आदि में आदर्श नारी का प्रतिपादित रूप था।

सोलहवीं शताब्दी में प्रचलित चैतन्य

तथा बल्लभ सम्प्रदायों में भी राधा को विशिष्ट स्थान मिला है। डॉ. गजानन शर्मा के अनुसार- ''परम पुरुष कृष्ण शक्तिमान् हैं, प्रकृति राधा भगवान् की शक्ति है। शक्ति, शक्तिमान् के अधीन रहती है। इस प्रकार राधा और कृष्ण अभिन्न हैं। गोपियाँ भी कृष्ण की शक्तियाँ हैं। राधा आह्लादिनी शक्ति हैं और गोपियाँ साधक रूप रसात्मक शक्ति है। कृष्ण अंशी है, राधा अंश है। कृष्ण परमात्मा है, राधा आत्मा है।''

कृष्णकाव्य में नारी दो रूपों में चित्रित की गयी है- प्रथम लौकिक रूप में गौरवमयी, मानिनी, स्वकीया, विरह-व्यथिता वियोगिनी के रूप में, द्वितीय अलौकिक रूप में परमब्रह्म की शक्तिस्वरूपा आदिशक्ति तथा आराध्या के रूप में। कृष्ण काव्य में भक्त कवियों ने जहां एक ओर नारी को सिद्धि-साधना के मार्ग की बाधा समझकर त्याज्य बताया है,वहीं दूसरी ओर उपासना के क्षेत्र में नर-नारी दोनों को समान बताया है। उन्हें उन्होंने ईश्वरोन्मुख किया है। नारी के समर्पण भाव को महत्ता प्रदान की है, क्योंकि भक्ति का मार्ग भी सेवा और समर्पण का भाव ही होता है और नारी के इस समर्पण भाव का अनुकरण करके ही भक्त अपने आराध्य के समीप पहुँचता है।

क्योंकि, काव्य या साहित्य के माध्यम से कवि का अन्तर्मन हो प्रस्फुटित होता है अत: कृष्ण काव्य में भक्तकवियों ने नारी-हृदय की दो स्वाभाविक प्रधान प्रवृत्तियों-वात्सल्य और प्रेम के आरोपण द्वारा नारी को जननी और जाया तथा माता आदि रूप में अवलम्ब बनाकर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है। मातृरूप का अधिकांश कवियों ने आदर किया है, किन्तु कहीं-कहीं भक्ति न करने वाले पुंत्र को जन्म देने वाले मातृरूप की निन्दा भी की है। कृष्ण-भक्त कवियों की रागानुराग भक्ति सिद्धान्तों के अनुसार अपने विशेष रूप में नारी को सामाजिक बन्धनों का त्याग करना भी मंगलमय बताया है। इसीलिए देखा गया है कि नारी अपने भक्तिरूप में सांसारिक बन्धनों का त्याग कर भगवद्-भक्ति में लीन हो जाती है।

कृष्ण काव्य में सूर आदि अष्टछाप कवियों के अतिरिक्त मीरा, रसखान तथा नरोत्तमदास की नारी-भावना की भी गणना की जाती है। मीरा जो स्वयं नारी है, उसने अपने कोमल एवं संवेदनशील हृदय से भगवान् कृष्ण की पत्नी-भाव से उपासना की है। रसखान ने भी गोपी एवं राधा-भाव से कृष्ण-भक्ति को प्राप्त किया। नरोत्तमदास ने अपने काव्य में नारी के पत्नी-रूप में उसके आदर्श पति-परायणा, परामर्शदात्री, सुख-दु:ख की समभागिनी, उसकी सहचरी तथा गुरु रूप का सुन्दर चित्रण किया है। अत: भक्तियुगीन कृष्ण काव्य में नारी के सम्पूर्ण सम्भावित रूपों की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।

-विवेक नगर, निकट डिग्री कॉलेज,चान्दपुर, जि. बिजनौर, 246725

मो: 9411049880

अग्निपुराण में वर्णित आयुर्वेद सार के अन्तर्गत वृक्षायुर्वेद एवं गवायुर्वेद

–डॉ. सन्दीप कुमार

आयुर्वेद-विद्या के स्रोत वेद हैं। ऋग्वेद काल से ही आयुर्वेद-विज्ञान का आरम्भ हो गया था परन्तु पूर्व वैदिक युग में यद्यपि कुछ शारीरिक व्याधियों का संकेत मात्र मिलता है, किन्तु अथर्ववेद तक आते-आते भैषज्य-विज्ञान का विशद प्रचार हो गया था। अतः सुश्रुत संहिता में आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपाङ्ग (उपवेद) कहा गया है[1]। सृष्टि के आरम्भ से ही रोग और उनके प्रतिकार का प्रयत्न चला आ रहा है। रोगों को दूर करके जीवन को निरोग और दीर्घ बनाना ही आयुर्वेद है। सुश्रुत संहिता में भी कहा गया है-

आयुरस्मिन् विद्यते,

अनेन वाऽऽयुर्विन्दन्ति इत्यायुर्वेदः[2]।

अर्थात् आयुर्वेद की निरुक्ति-शरीर, इन्द्रिय, सत्त्व और आत्मा इनके संयोग का नाम आयु है, यह इस आयुर्वेद में है, अथवा इस शास्त्र के द्वारा आयु प्राप्त होती है इसलिए यह आयुर्वेद है अतः आयु की वृद्धि करने वाला शास्त्र आयुर्वेद कहलाता है[3]। इसके आदि आचार्य अश्विनी कुमार माने जाते हैं इन्द्र ने यह विद्या अश्विनी कुमारों से सीखकर धन्वन्तरि को सिखायी[4]। सुश्रुत संहिता में भी ऐसा ही वर्णन मिलता है[5]-

धन्वन्तरि ने अपने शिष्य सुश्रुत को जो आयुर्वेद विषयक ज्ञान दिया अग्निपुराण में उसी का प्रतिपादन हुआ है[6]।

अग्निपुराण में अध्याय २७९ से २९३ पर्यन्त आयुर्वेद विद्या का वर्णन है। यह आयुर्वेदशास्त्र मानवमात्र के रोगनिवारण का ही वर्णन नहीं करता अपितु अश्व, गौ, वृक्ष एवं गजादि आयुर्वेद भी इसमें वर्णित हैं। चरकसंहिता में आयुर्वेद के आठ अङ्ग विहित हैं, सुश्रुत संहिता में इन्हीं अङ्गों को इस प्रकार कहा है-**शल्यं, शालाक्यं, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्यं, अगदतन्त्रं, रसायनतन्त्रं वाजीकरणतन्त्रमिति**[7]। आयुर्वेद के उपलब्ध प्राचीन ग्रन्थों में सुश्रुत संहिता, चरक संहिता, अष्टाङ्गहृदयम्, शार्ङ्गधर संहिता आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं, इन ग्रन्थों में वर्णित आयुर्वेद के आठ अङ्ग अग्निपुराण में पृथक्-पृथक् रूप में दृष्टिगोचर होते हैं।

अग्निपुराण में आयुर्वेद के जिन विषयों का वर्णन है वे इस प्रकार हैं-त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) ''वातपित्तकफादोषाः''[8] स्थान विशेष का

१. सुश्रुत संहिता (सूत्र स्थान १/३)
२. सुश्रुत संहिता (सूत्र स्थान १/१५)
३. चरक संहिता (सूत्र स्थान १/२९)
४. वायुपुराण-९२.१६
५. सुश्रुत संहिता, (सूत्र स्थान १/२०)
६. अग्निपुराण-२७९/१-२
७. सुश्रुस्त संहिता (सूत्र स्थान १/६-७)
८. अग्निपुराण-२८०/७

इन दोषों पर प्रभाव, मानव शरीर के प्रकार[9], भोजन के नियम[10], व्याधियों के प्रकार[11], त्रिदोषों का शमन, चिकित्सक के कर्त्तव्य, औषधियों के प्रकार, विभिन्न रोगों की चिकित्सा, सिद्धयोग, वृक्षायुर्वेद, गवायुर्वेद, गजायुर्वेद व अश्वायुर्वेदादि। यहां वृक्षायुर्वेद एवं गवायुर्वेद का विस्तृत वर्णन द्रष्टव्य है। यजुर्वेद में वर्णन है-"शं नो वातः पवताम्"[12] अर्थात् हे वायुदेव! यह वायु हमारे लिए शुद्ध प्रदूषण रहित होकर बहे।

आज के प्रदूषित वातावरण में पर्यावरण के संरक्षण का एकमात्र साधन है वृक्षों का संरक्षण एवं संवर्धन । इनसे मनुष्यों को न केवल भोजन अपितु रोगहर औषधियां भी प्राप्त होती हैं। अतः इन उपयोगों के कारण वृक्षों की भी चिकित्सा अनिवार्य है। अग्निपुराण के वृक्षायुर्वेद प्रसंग में वृक्षारोपण का उचित समय, वृक्षारोपण की उचित दिशा, वृक्षारोपण का उचित स्थान, वृक्ष चिकित्सादि विभिन्न विषयों का वर्णन है। वृक्षारोपण से पूर्व ब्राह्मण व चन्द्रमा की पूजा करनी चाहिए[13]। वृक्षारोपण के लिए उत्तरा, स्वाती, हस्त, रोहिणी, श्रवण और मूल ये सभी नक्षत्र प्रशस्त हैं[14]। ग्रीष्म ऋतु में सायंकाल एवं प्रातःकाल दोनों समय में, शीत ऋतु में दिन में, वर्षा ऋतु में भूमि के सूख जाने पर रात्रि में वृक्षों को लगाना उत्तम होता है[15]। घर के उत्तर दिशा में पाखरि (प्लक्ष), पूर्व में वट, दक्षिण में आम्र और पश्चिम में पीपल का पेड़ शुभ होता है। दक्षिण दिशा में कांटेदार वृक्ष (बेर, बबूल) शुभ होते हैं[16]।

वृक्षों के आरोपण से पूर्व भूमि पर गढ्ढा बनाना चाहिए। उस गढ्ढे में वृक्ष लगाकर जल से भरना चाहिए। दो वृक्षों के मध्य बीस हाथ का अन्तर उत्तम माना गया है। बारह हाथ का अन्तर मध्यम होता है। बारह हाथ के अन्तराल वाले वृक्षों को एक स्थान से दूसरे स्थान में स्थानान्तरित करते रहना चाहिए[17]। अग्निपुराण में इन वृक्षों की चिकित्सा के उपाय भी बताए गए हैं। जैसे-जिस वृक्ष का फल लगकर झड़ जाता हो उस वृक्ष की जड़ में कुलत्थी, उड़द, मूंग, तिल व यव के चूर्ण से मिश्रित शीतल जल से सिंचन करें। भेड़ बकरी के गोबर का चूर्ण, जवा (यव) व तिल का चूर्ण घी में मिलाकर शीतल जल में सात दिन तक एक स्थान पर रखकर उसके बाद उससे वृक्षों को सींचने से फल लगते हैं[18]। यह भी उपाय कहा गया है कि विडङ्ग का चूर्ण व मछली का मांस सामान्य रूप से सभी वृक्षों के रोगों को नष्ट करने वाला होता है[19]।

अग्निपुराण में आयुर्वेद वर्णनान्तर्गत गौ माहात्म्य एवं गौ-चिकित्सा भी विशेष रूप से उल्लिखित है। गौ-माहात्म्य का वर्णन करते हुए गौ को पवित्र, मंगलमयी, सभी लोकों की अधिष्ठातृ[20] एवं उसे देवता, ब्राह्मण व साधु के

---

९. अग्निपु. २८१/१९ — १०. वही-२८०/७ — ११. वही-२८०/१

१२. यजुर्वेद-३६/१० — १३ अग्निपुराण-२८२/३ — १४. वही-२८२/४

१५. वही-२८२/७-८ — १६. वही- २८२/१-२ — १७. वही-२८२/८-९

१८. वही- २८२/१०-११ — १९ वही-२८२/१२-१३ — २०. वही २९२/१-२

समकक्ष समझा गया है[21]। गोमूत्र, गोबर, गोदुग्ध, गोदधि, घृत और गोरोचन यह षडङ्ग (पञ्चगव्य) का पीना दु:स्वप्न निवारण की सर्वोत्तम औषधि है[22]। गाय को पवित्र व स्वर्ग-प्रदायिनी माना गया है, उसकी सेवा व पूजा करना परम कल्याणकारी माना गया है। गोमूत्र, गोबर, घी, गोदुग्ध,गोदधि और कुश का जल इन सभी को मिलाकर पीने से और एक दिन उपवास करें तो चाण्डाल भी पवित्र हो जाता है, प्राचीन काल में देवताओं ने भी समस्त पापों के विनाश हेतु इस अनुष्ठान को किया था[23]। इन (गोमूत्रादि) वस्तुओं के सेवन द्वारा विभिन्न व्रतों के पालन का निर्देश अग्निपुराण में किया गया है। इन व्रतों के अनुष्ठानों का एकमात्र मुख्योद्देश्य दु:खों का निवारण एवं ब्रह्मलोक की प्राप्ति है[24]।

गौ चिकित्सा के अन्तर्गत गौ के विभिन्न रोगों की चिकित्सा भी यहां वर्णित है-गायों के सीगों में यदि रोग हो तो सोंठ, खरेठी और जटामांसी को सील (पत्थर) पर पीसकर उसमें शहद, सैन्धव और तेल मिलाकर प्रयोग करना चाहिए[25]। गायों के कर्णशूल सम्बन्धी रोगों में मञ्जीष्ठा, हींग और सैन्धव का पकाया हुआ तैल प्रयोग करना चाहिए अथवा लहसून के साथ पकाया हुआ तैल प्रयोग करना चाहिए[26]।

दन्तशूल रोगों में विल्व फल, अपामार्ग, धात-की, पाटला और कूटज का लेप करना चाहिए वह शूल नाशक होता है[27]। मुख रोगों का प्रशमन दन्तशूल नाशक द्रव्यों और कूट को घी में पकाकर देने से होता है। जिह्वा रोगों में सैन्धव नमक प्रशस्त होता है[28]। गले के रोगों में सोंठ, हल्दी, दारुहल्दी और त्रिफला का प्रयोग करना चाहिए। हृदय शूल, वस्तिशूल, वातरोग और क्षयरोग में गोघृतमिश्रित त्रिफला का अनुपान प्रशस्त होता है[29]।

हड्डी टूट जाने पर लवण मिलाकर प्रियङ्गु का लेप करना चाहिए। तेल वातरोग का हरण करता है। पित्त रोगों में तेल में पकायी हुई मुलहठी। कफ रोगों में मधु सहित त्रिकटु तथा रक्त विकार में मजबूत नखों का भस्म देना चाहिए[30]। अतिसार रोग में दारुहल्दी और पाठा देना चाहिए। सभी प्रकार के कोष्ठगत रोगों में पैर, पुच्छ आदि रोगों में तथा कास, श्वास आदि अन्य साधारण रोगों में सोंठ एवं भारङ्गी देना चाहिए[31]।

इन रोगों के उपचार का उल्लेख करने के साथ-२ अग्निपुराण में बैलों को पुष्ट करने सम्बन्धी औषधीय योग एवं गौओं में दुग्ध वृद्धि करने के योग (उपाय) भी वर्णित हैं। अग्निपुराण के अनुसार उड़द, तिल, गेहूं, दूध, घी तथा खीर की पिण्डी में नमक मिलाकर बछड़े को देने से उसकी पुष्टि होती है अर्थात् बछड़ा हृष्ट-पुष्ट होता है[32]।

इसी प्रकार गौओं में दुग्ध बढ़ाने के लिए असगन्ध व सफेद तिल के साथ नवनीत खिलाने से गाएं दुधारू होती हैं। जो बैल घर में मदोन्मत हो

२१. अग्निपुराण-२९२/२० २२. वही-२९२/३ २३. वही-२९२/६-७
२४. वही-२९२/८-१३ २५. वही-२९२/२३ २६. अग्निपुराण २९२/२४
२७. वही-२९२/२५ २८. वही-२९२/२६ २९. वही-२९२/२७
३०. वही-२९२/२९-३१ ३१. वही-२९२/२८ ३२. वही-२९२/३२

जाता हो उसके लिए हिंगु परम रसायन है[33]। इसके अतिरिक्त गरुड पुराण में भी गवायुर्वेद का वर्णन मिलता है; जिसमें गौशरीर में स्थित कई प्रकार के रोगों की चिकित्सा का वर्णन उपलब्ध होता है[34]।

अत: संक्षिप्त रूप में लिखा जा सकता है कि अग्निपुराणोक्त आयुर्वेद विविध प्रकार की आयुर्वेदीय सामग्री को प्रस्तुत करता है। यह आयुर्वेद प्रकरण अग्निज्ञपुराण के २७९ से २९३ अध्यायों तक प्राप्त होता है। मनुष्य शरीर में त्रिदोषों (वातपित्तकफ) का महत्त्व, मानव शरीर के प्रकार (दुर्बल, स्थूल, मध्यम) शारीरिक व्याधियां (शारीरिक, मानसिक, आगन्तुक, सहज) मानव प्रकृति आदि भिन्न-२ विषयों तथा वृक्ष, गौ, गज एवं अश्वायुर्वेद भी वर्णित हैं।

वृक्ष पर्यावरण के लिए महत्त्वपूर्ण एवं औषधियों के प्रदाता हैं अत एव वृक्षों का रोग मुक्त रहना, वृक्षों का आरोपण, उनके आरोपण की उचित दिशा, वृक्षों के मध्य अन्तराल आदि का उचित ज्ञान भी परमावश्यक हैं। इसी प्रकार गौ भारतीय हिन्दूधर्म में विशेष स्थान रखती है। अग्निपुराण में गौ के माहात्म्य को प्रकट करते हुए उसे लोकाधार कहकर सम्मानित किया गया है तथा उसके गोबर, मूत्र, दूध, दही, घृत (पञ्चगव्य) को सर्वोत्तम औषधि कहा गया है। गौ-चिकित्सा का भी विस्तारपूर्वक उल्लेख प्राप्त होता है। यद्यपि आयुर्वेदीय ग्रन्थों में आयुर्वेद विषय को कई खण्डों में विभक्त किया गया है-सूत्र स्थान, निदान स्थान, शरीर स्थान, चिकित्सा स्थान, कल्प स्थान व उत्तरतन्त्रादि। अग्निपुराण में मुख्य रूप से सूत्रस्थान एवं चिकित्सास्थान से ही सामग्री ग्रहण की है जिसका उद्देश्य जनसाधारण तक आयुर्वेद के सामान्य ज्ञान को पहुंचाना है।

-संस्कृत प्रवक्ता, रा. व. मा. विद्यालय, तनेहड़, मण्डी (हि. प्र.)

३३. अग्निपुराण-२९२/३५

३४. गरुडपुराण की दर्शनिक एवं आयुर्वेदिक सामग्री का अध्ययन पृ. २४६

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।।

कठोपनिषद् २.१७

ओंकार ही परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के लिए सब प्रकार के आलम्बनों में से सर्वश्रेष्ठ सहारा है। इससे बढ़कर और कोई सहारा नहीं। यही एकमात्र सहारा है। परमात्मा की शरण हो जाना ही उनकी प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग है। इस रहस्य को समझकर जो साधक श्रद्धा और प्रेमपूर्वक परमात्मा पर निर्भर करता है। वह नि:सन्देह परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

गतांक से आगे

भारतीय दर्शन के विकास में बिहार के प्राचीन ऋषियों, महर्षियों एवं दार्शनिकों का योगदान

–डॉ. विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी'

आधुनिक काल:-

यह सर्वविदित है कि ज्ञानमयी मिथिला दर्शनशास्त्रों की उद्‌भव और विकास की उर्वरा भूमि रही है। सांख्ययोग के अतिरिक्त मीमांसा तथा प्राचीन एवं नव्य न्याय का प्रमुख केन्द्र रही है। बीसवीं शती के प्रारम्भ में मीमांसकों के विचारों से मिथिला सम्पूर्ण देश में सम्मानित थी।

पंडित धर्मदत्त शर्मा शास्त्री (बच्चा झा)

मिथिला के विख्यात विद्वान् श्रीमान् पंडित धर्मदत्त शर्मा शास्त्री [बच्चा जी)] बड़े मेधावी पुरुष थे। इन्होंने समग्र न्याय का अध्ययन किया था। इन्होंने वेदान्त का अध्ययन श्री स्वामी कैलास पर्वत जी से किया था, जो तत्कालीन नेपाल नरेश के गुरु थे।

यहाँ उल्लेखनीय है कि होश्यारपुर (पंजाब) निवासी स्वामी प्रकाशानन्द पुरी विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। आप विशेष अध्ययन के लिए विद्यानगरी काशी में आए। अल्पवयस्क तथा होनहार बालक को देखकर कैलासमठ के संस्थापक स्वामी कैलास पर्वत जी महाराज ने अपनी शरण में ले लिया। यही स्वामी जी प्रकाशानन्द पुरी को लेकर कर्कशन्यायशास्त्र के अध्ययन के लिये काशी से मिथिला (बिहार) में श्रीमत्पं० धर्मदत्त शर्मा[बच्चा झा] जी के पास पहुँचे। न्याय, मीमांसा तथा वेदान्त के प्रौढ़ ग्रंथों का श्रवण स्वामी प्रकाशानन्द पुरी जी पं. बच्चा झा जी से करने लगे।

कहा जाता है कि श्री बच्चा झा जी से काशी के एक पं. शास्त्रार्थ करने आये और प्रश्न पूछा जिसका उत्तर इन्होंने तत्काल दे दिया। तद्‌पश्चात् इन्होंने एक प्रश्न उनके समक्ष प्रस्तुत किया जिसका उत्तर न दे सकने के कारण वह पंडित शर्म से शरीर को त्याग करने राजघाट गया, उसका पता इनको लगने पर स्वयं ही वहां जाकर उनको समझा-बुझा कर घर लाया गया और अपने से शास्त्रार्थ में विजयी होने का प्रमाण-पत्र अपने हाथ से लिख कर उस पंडित को दे दिया। इनकी जीवनी अज्ञात ही है।

मीमांसक शिरोमणि पं. चित्रधर मिश्र:

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मिथिला नगरी में अनेक मीमांसकों का आविर्भाव हुआ जो पूरे देश में सम्मानित थे। ऐसे ही पावनवेला में मीमांसक शिरोमणि पं. चित्रधर मिश्र का जन्म माघ कृष्ण चतुर्दशी बुधवार संवत् 1901 तदनुसार 29 जनवरी, 1844 ई० को दरभंगा जिले [अब समस्तीपुर] में टमका नामक ग्राम में हुआ था। महाकवि बाणभट्ट के समान तरुणावस्था में ये भी भ्रमण-विचरण में संलग्न रहते थे।

कहा जाता है कि मनुष्य के जीवन में कभी - कभी एकाएक परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन

अच्छा भी होता है और बुरा भी।

आप क्रमश: व्याकरण, धर्मशास्त्र तथा दर्शन की परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए। तत्पश्चात् नेपाल के राजगुरु पं. नीलदेव पंत से मीमांसाशास्त्र का आप ने गहन अध्ययन किया। मिथिला के मीमांसकों की पूर्ण प्रतिष्ठा इस शताब्दी में इन्होंने ही कायम की। कुछ ही दिनों में इनकी ख्याति इने-गिन मीमांसकों में होने लगी। मीमांसा के तो अवतार ही कहे जाते थे। काशीस्थ भारतधर्म मण्डल ने आप को 'मीमांसक शिरोमणि' की उपाधि से अलंकृत किया था। इसी क्रम में ये दरभंगा नरेश महाराज मिथिलेश लक्ष्मीश्वर सिंह तथा महाराजाधिराज रामेश्वर सिंह के राज पंडित नियुक्त हुए।

यहां विशेषतया उल्लेखनीय है कि बिहार मिथिलाक्षेत्र के दरभंगा रियासत के नरेश महाराज रामेश्वर प्रताप सिंह की जीवनशैली आध्यात्मिक थी, जिसने उनके लिए अध्यात्म पथ के, दिव्य-जीवन के द्वार खोल दिए थे। महाराज रामेश्वर सिंह नित्यप्रति दो बजे उठ जाया करते थे और शय्या पर ही 'श्रीदुर्गासप्तशती' का एक सम्पूर्ण पाठ कर लेते थे। इसके पश्चात् साढ़े तीन बजे स्नान आदि से निवृत्त होकर वैदिकसंध्या एवं सहस्र गायत्रीजप कर एक मन चावल का नित्य पिंडदान करते थे। उसके पश्चात् पार्थिव शिवलिंग का पूजन ब्रह्ममुहूर्त [अमृतवेला] में ही संपन्न कर भगवती के मंदिर में जाते थे। वहां पर वह तांत्रिक संध्या करने के बाद तांत्रिक विधान के अनुसार पात्रस्थापन करते थे। उसके पश्चात् वह भगवती महाकाली का पूजन-आवरण पूजनादि, जप, पंचांग पाठ कर ककारादि सहस्रनाम से पुष्पांजलि देते थें। सुप्रसिद्ध न्यायवेत्ता महामहोपाध्याय पं. सतीशचन्द्र विद्याभूषण, महामहोपाध्याय पं. मुकुन्द झा, पं. जटेश्वर झा आदि आप के प्रमुख शिष्य हुए।

पं. चित्रधर मिश्र अजातशत्रु थे। भगवान् शंकर के बड़े ही भक्त थे। आप अनेक निबंधों के रचयिता थे। आप की तीन रचनाएं सुप्रसिद्ध हैं:- १ मीमांसासार संग्रह, २ मैथिल-संस्कृत-कवि-नामावली और ३ उपलक्षण संग्रह।

इनके वैदुष्य से प्रभावित होकर गुणग्राही महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी ने इनसे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापन के लिए आग्रह किया था। पं. जी के पंच भौतिक शरीर का सन् 1920 ई० में परलोक गमन हुआ।

महामहोपाध्याय सर डॉ. गंगानाथ झा:

बीसवीं शताब्दी के अंग्रेजी भाषावेत्ता संस्कृत विद्वानों से आपने समस्त भारतीय दर्शनशास्त्रों का अध्ययन किया तथापि मीमांसा-शास्त्र के प्रति आप की विशेष अभिरुचि थी।

सर डॉ. गंगानाथ झा का जन्म २५ दिसम्बर, १८७२ ई० को अपने ही गाँव दरभंगा जिले के सरिसव में हुआ था। इनके पूर्वपुरुष श्रोत्रिय ब्राह्मण थे जो मैथिल ब्राह्मणों में सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं। गंगानाथ झा महाराजाधिराज दरभंगा से सम्बन्धित थे।

सर डॉ. गंगानाथ झा अत्यन्त भाग्यशाली सत्पुरुष थे। भारतीय दर्शन एवं संस्कृत-साहित्य के गम्भीर विद्वान् थे। आप ने लगातार ९ वर्षों तक प्रयाग विश्वविद्यालय के कुलपति पद को

१. अखण्ड ज्योति (मासिक), दिसम्बर, २०१३ पृ. २२

सुशोभित किया। पुनः आप के बाद आप के पुत्ररत्न डॉ. अमरनाथ झा अंग्रेजी साहित्य के लोकप्रिय विद्वान् प्रयाग विश्वविद्यालय के विख्यात उपकुलपति ९ वर्षों तक रहे।

डॉ. गंगानाथ झा जी ने अपने जीवन में अनेक सम्मान तथा उपाधियाँ प्राप्त कीं। सन् १९०० ई में इन्हें अपनी थीसिस 'पूर्वमीमांसा में प्रभाकर का सम्प्रदाय' [Prabhakar School of Purva Mimansa] पर डी. लिट्. की उपाधि प्राप्त हुई थी। सन् १९०१ ई० में भारत सरकार ने इनकी अलौकिक विद्वत्ता के फलस्वरूप इन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि से विभूषित किया था। केन्द्रीय सरकार ने इन्हें 'कौन्सिल ऑफ स्टेट' का सदस्य मनोनीत कर इन्हें सम्मान प्रदान किया। बम्बई की एशियाटिक सोसाइटी ने इन्हें 'कैम्पवेल मेडल' प्रदान कर अपने को ही सम्मानित किया था। लन्दन की रायल एशियाटिक सोसाइटी ने इन्हें अपना 'आनरेरी मेम्बर' चुना था। केन्द्रीय ब्रिटिश सरकार ने नाइट हुड [सर] की महनीय उपाधि से विभूषित किया था।

उन्होंने भारतीय दार्शनिक कांग्रेस के द्वितीय वार्षिक अधिवेशन तथा अखिल भारतीय प्राच्य सम्मेलन के तृतीय अधिवेशन के अध्यक्ष पद को भी अलंकृत किया था। उन्होंने भारतीय दर्शन के अनेक ग्रंथों को सम्पादित और अनुदित कर अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित किया था। इन ग्रंथों से 'जैमिनी के मीमांसा-सूत्र' 'शंकराचार्य की कृतियाँ' तथा 'वेदान्तदर्शन' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सर डॉ. गंगानाथ झा के ग्रंथों के अवलोकनार्थ विस्मय विमुग्ध होकर एक जर्मन विद्वान् ने उन्हें लिखा था-

"आप के व्यक्तित्व में गम्भीर विद्वत्तापूर्ण प्राचीन भारतीय पंडित तथा व्यापक दृष्टि सम्पन्न आधुनिक पाश्चात्य विद्वान् का अतिभव्य सामञ्जस्य है।' सचमुच वे "विद्या ददाति विनयम्' की प्रत्यक्ष मूर्ति थे।

डॉ. सर गंगानाथ झा बड़े ही संयमी पुरुष थे साथ ही उच्चकोटि के आस्तिक थे ये नित्यप्रति एकसहस्र गायत्रीमंत्र का जप करते थे। विद्या के स्वामी सर डॉ. झा का पार्थिव काया का अवसान प्रयाग में ६९ वर्ष की उम्र में दिनाँक ९ नवम्बर १९४१ ई, को हुआ।

महामहोपाध्याय पं. रामावतार शर्मा:

साहित्याचार्य और दर्शनाचार्य पंडित रामावतार शर्मा बिना ताज के राजा थे। विद्या की देवी सरस्वती माता ने अपने चरणों में उनकी अगाध प्रीति देखकर उनके सिर पर हाथ फेर दिया था। बस वे विद्या के कुबेर बन गए। इनकी कीर्ति देश-देशान्तर में व्याप्त थी, परन्तु इनकी जीवन-लीला तीन स्थानों में ही सिमट कर विद्यमान रही-छपरा, विद्या की नगरी काशी तथा पटना।

पंडित रामावतार शर्मा का जन्म छपरा के ही नवीगंज मुहल्ले में [जिसका संस्कृत नाम उन्होंने 'नवकुंज' रखा] था, फाल्गुन शुक्ल चतुर्थी तदनुसार [६ मार्च, १८७७ ई०] को हुआ था। आप के पिता पंडित देवनारायण शर्मा संस्कृत के विद्वान् और धर्मात्मा थे। वे विद्या के प्रेमी थे।

बचपन से ही आप की बुद्धि तीक्ष्ण थी। पढ़ने में ऐसी लगन थी कि बारह वर्ष की अवस्था

में ही संस्कृत की प्रथम परीक्षा पास कर गये और प्रथम श्रेणी में पास हुए। पिता जी के स्वर्गवास के बाद विधवा माता ने अपने गहने बेचकर आप को पढ़ाना शुरु किया। उसी अवस्था में आप काशी की संस्कृत की साहित्याचार्य परीक्षा में सर्वोत्तम हुए। काशी के यशस्वी विद्वान् पण्डित गंगाधर शास्त्री आप के गुरु थे। आप की गुरुभक्ति से वे बहुत प्रसन्न रहते थे और आप की बुद्धि की बड़ी प्रशंसा किया करते थे।

आचार्य पं. रामावतार शर्मा जी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और पटना विश्वविद्यालय में संस्कृत साहित्य के प्रधान आचार्य तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय. में भारतीय दर्शन के सफल व्याख्याता रहे थे। शर्मा जी विविध विषयों के पारंगत विद्वान् थे।

भारतीय दर्शन के क्षेत्र में उनका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। स्वर्गीय डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल के शब्दों में, वे कपिल और कणाद की कोटि में थे।' उनका 'परमार्थ-दर्शन' नामक ग्रंथ भारतीय दर्शनसाहित्य में सप्तम दर्शन का प्रतीक माना जाता है। इसके अतिरिक्त वेदान्त, उपनिषद् और पुराण के विषय के भी उनके अनेक ग्रंथ प्रकाशित हैं। पाश्चात्य दर्शन का भी आपने पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त किया था और उस विषय का ग्रंथ भी लिखा था। भूमण्डल के श्रेष्ठतम दार्शनिकों में वे प्रमुख थे।

उल्लेखनीय है कि पं. रामावतार शर्मा जी ने अंग्रेजी में बहुत कम लिखा है। कलकत्ता विश्वविद्यालय में वेदान्त पर इन्होंने जो व्याख्यान दिये थे वे 'श्री गोपालवसु मल्लिक लेक्चर्स आन वेदान्तिज्म' के नाम से सन् १९०८ ई. में प्रकाशित हो चुके हैं। इस ग्रंथ से शर्मा जी के दार्शनिक चिन्तन तथा तत्त्वज्ञान संबंधी गम्भीर विद्वत्ता का परिचय मिलता है।

एक बात और भी है। पंडित जी की 'परमार्थ-दर्शन' में पद्यबद्ध ८२६ वार्तिकों की रचना कुमारिल भट्ट की श्लोक वार्तिक वाली शैली को प्रकाशित करती है। फलतः यह सर्वांगपूर्ण दार्शनिक पद्धति का द्योतक बडा ही श्लाघनीय एवं आदरणीय ग्रंथ है।

साहित्याचार्य पं. रामावतार शर्मा की भारतवर्ष के प्रसिद्ध विद्वानों में गिनती थी। विदेश के संस्कृतप्रेमी विद्वान् भी आप की योग्यता के कायल थे। आप हिन्दी के सच्चे प्रेमी थे। संस्कृत की तरह हिन्दी में आपने कई ग्रंथ लिखे। अपने परिश्रम और विद्या के बल से ही आप इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके। इतने बड़े विद्वान् होकर भी आप बड़े मिलनसार थे। आप ने सन् १९३३ ई० में इस नश्वर शरीर का परित्याग किया।

न्यायशास्त्र के विलक्षण विद्वान् पं. बालकृष्ण मिश्रः

पंडित बालकृष्ण मिश्र संस्कृतसाहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् थे। आप का जन्म मिथिला के प्राचीन प्रतिष्ठित विद्वानों के कुल में हुआ था। आप के पूर्व पुरुष में सुप्रसिद्ध विद्वान् तथा मनीषी शंकर मिश्र थे। इन्हीं विद्वान् पंडितों की कुल-परम्परा में पं. बालकृष्ण मिश्र का अवतरण सन् १८८८ ई० में हुआ था। आप की जन्मभूमि दरभंगा जिले का 'सरिसव' ग्राम है।

आप ने महामहोपाध्याय पं. चित्रधर मिश्र से

न्याय तथा मीमांसा शास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया। यहीं पर आप ने सुप्रसिद्ध विद्वान् पं. शशिनाथ झा से व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया और दर्शन के प्रकाण्ड पंडित बच्चा झा से वेदान्त का पाठ पढ़ा। आप की अगाध विद्वत्ता से विस्मय विमुग्ध होकर पं. मदन मोहन मालवीय जी ने आप को अपने विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के लिए सादर तथा आग्रहपूर्वक निमंत्रण दिया और ये मालवीय जी का सन्देश पाकर शीघ्र ही काशी चले आये। इसी समय ब्रिटिश सरकार ने इनकी अलौकिक विद्वत्ता के फलस्वरूप इन्हें 'महामहोपाध्याय' की महनीय उपाधि से अलंकृत किया था।

न्याय जैसे कर्कशशास्त्र के विषय में शास्त्रार्थ करते समय आप दुरूह से दुरूह विषयों का साहित्यिक माधुरी के साथ विवेचन करते थे। न्याय के शास्त्रार्थ की शैली तर्क कर्कश होती है। आप धर्म की साक्षात् मूर्ति थे। आप के मुखमण्डल पर अद्भुत दैवीतेज परिलक्षित होता था। सन् १९४६ ई में काशी में शरीरान्त हुआ।

दर्शनशास्त्र के साहित्यिक विद्वान् प्रोफेसर हरिमोहन झाः

मिथिला निवासी और पटना विश्वविद्यालय के भारतीय दर्शनशास्त्र के प्रतिष्ठित विद्वान् और साहित्य-मर्मज्ञ प्रोफेसर हरिमोहन झा, एम्. ए. द्वारा लिखित शोधपूर्ण लेख 'सन्त-साहित्य का दार्शनिक आधार' है। उन्होंने स्पष्टरूप से लिखा है ''यदि संत काव्य की धारा की उपमा गंगा की धारा से दी जाय तो यह कहा जा सकता है कि जहां उपनिषद् की गोमुखी अत्युच्च धरातल पर आदिस्रोत प्रवाहित करती है, जहां गीता की अलकनंदा कठिन प्रदेश में विरले ही भाग्यवानों को प्राप्त होती है, जहां वेदान्तसूत्र की दुर्गम मन्दाकिनी इने-गिने लोगों को ही आप्यायित कर पाती है, वहां संत काव्य की गंगा करोड़ों जनता को अपने सहज सुशीतल वारि में अवगाहन कराती हुई शान्ति प्रदान करती है।'' इनका 'भारतीय दर्शन परिचय' नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ है।

इस प्रकार सौभाग्य से बिहार के अन्तर्गत मिथिला ने विद्वत्ता की नगरी के रम्य प्रांगण में योगियों में श्रेष्ठ विदेहराज जनक से लेकर आज तक अनेकानेक दर्शनशास्त्र की विद्वान्-विभूतियों को जन्म दिया है। इसी पावन भूमि में मैथिल कोकिल महाकवि विद्यापति की पीयूषवाणी प्रस्फुटित हुई थी।

साररूप में भारतीय दर्शन के देव-दुर्लभ दार्शनिक विद्वान् चन्द्रमा के समान सुशीतल, पवित्र एवं स्निग्ध तथा सूर्य के समान तेजस्वी और प्रभावान् हैं। भगवती वीणापाणि वाणी के वरद-हस्त की सुशीतल छाया उनके ऊपर स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। भला वाणी-सरस्वती की मर्यादा का ऐसा सजग-प्रहरी और पुजारी आप को और कहाँ मिलेगा ?

रामतीर्थकुंज, ग्राम+पो० रांकोडीह, वाया-कोसी कालेज,
खगड़िया, जि० खगड़िया (बिहार) 851205

कवि केदार प्रणीत 'ने० सुभाषचरितम्' महाकाव्य में नायक का चरित्र-चित्रण

-डॉ. बलवन्त सिंह चौहान

संस्कृत के उद्भट विद्वान्, क्रान्तिकारी विचारों से ओत-प्रोत, संस्कृतभाषा के प्रचार-प्रचार में सर्वसमर्पित, आध्यात्मिकता और दानवीरता के धनी पूणे के मनीषी कविवर केदार प्रणीत ग्यारह सर्गीय १७३० पद्यों में निबद्ध 'ने. सुभाषचरितम्' महाकाव्य स्वतन्त्रता सेनानियों पर रचित महाकाव्यों में उत्कृष्ट कोटि का है। इसमें कायस्थ कुलोत्पन्न, धैर्यवान्, साहसी, शौर्यादि गुणों से संवलित, स्वनामधन्य स्वतन्त्रता-संग्राम के महान् क्रान्तिकारी धीरोदात्त गुणों से संवलित, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के सम्पूर्ण जीवन-वृत्तान्तों को समाहित किया गया है। प्रस्तुत महाकाव्य इतिवृत्त पर आधृत होते हुए भी नूतन कल्पनाओं के इन्द्रधनुषी रंगों से सुसज्जित एवं हृदयावर्जक है। वीररस प्रधान उक्त कृति में देशभक्त नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के चरित्र को कविवर ने इस प्रकार चित्रित किया है।

सहृदय एवं भावुक- स्वन्त्रता-संग्राम के अग्रगामी योद्धा सुभाषचन्द्र बोस क्रान्तिकारी एवं कठोर हृदय होने के साथ-साथ सहृदय और भावुक प्रकृति के भी थे। जब सुभाष को अपने पिता की मृत्यु का संदेश मिलता है तो वे शोकाकुल स्थिति में पहुँच जाते हैं और पूर्व में दिये गये उपदेशों और स्मृतियों को पुनः स्मरण करते हैं[१]।

कोमल हृदय से युक्त होने के कारण ही बंगाल में वर्षा के कारण हुए विनाश को देखकर भावुक हो उठते हैं और स्वयं युवावर्ग को साथ लेकर अनाथ हुए बच्चों, भूखे-प्यासे पुरुष-महिलाओं एवं बीमारी से ग्रसित रोगियों की तन-मन-धन से छः सप्ताह तक सेवा करते हैं[२]।

४ जुलाई, १९४३ को रासबिहारी बोस द्वारा सिंगापुर में आयोजित विशाल सभा में आगन्तुक अतिथि सुभाषचन्द्र को आजाद हिन्द फौज का सर्वोच्च सेनापति नियुक्त किया जाता है। उल्लास के इस वातावरण में शपथ लेते समय उनका कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है और भावावेग में उनके नेत्रों से आँसू गिरने लगते हैं[३]।

आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत- क्रान्तिकारियों के प्रेरणास्रोत नेता सुभाष ने आदर्शों, परम्पराओं और अध्यात्म के प्रति अटूट श्रद्धा पैतृकरूप से अर्जित की थी। आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत इनकी माँ प्रभावती धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं। मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण होते ही उन्होंने आध्यात्मिक गुरु की खोज में हरिद्वार, ऋषिकेश, गया एवं काशी प्रभृति तीर्थस्थलों का भ्रमण किया[४-५]।

उनके परिवार में व्रत-उपवासादि एवं धार्मिक कार्यक्रम सम्पन्न किये जाते थे[६]।

सिंगापुर के 'कैथे' नामक चित्रपट गृह में आजाद हिन्द फौज का सर्वोच्च सेनापति नियुक्त होने पर सुभाषचन्द्र महेश्वर का स्मरण करते हुए उद्गार प्रकट करते हैं[७]।

दानशील एवं समाजसेवी- भारतमाता के वीर सपूत श्री सुभाषचन्द्र ने दानशीलता एवं समाज सेवा प्रभृति गुण वंशानुगत अर्जित किये थे। जब बंगाल में भयावह बाढ़ आई तो उन्होंने जेल से छूटते ही चारों

१. ने० सुभाषचरितम्, ३/३४ २. वही, ३/३४ ३. वही, ८/१४
४. वही, १/२९ ५. वही, १/२८ ६. वही, १/२१ ७. वही, ८/१०; ११

ओर त्राहि-त्राहि मची देखी। इसे देख उनका मन द्रवीभूत हो उठा और वे बिना विश्राम किये बाढ़ पीड़ितों की सहायता करते रहें[८]।

सन् १९२३ में कलकत्ता नगर-निगम चुनावों में स्वराज्य-पार्टी के उम्मीदवारों ने नगर-निगम पर पूरी तरह कब्जा जमा लिया और सुभाष निर्विरोध मुख्य कार्यक्रम अधिकारी नियुक्त हुए एवं चितरञ्जनदास महापौर नियुक्त किये गये। सुभाषचन्द्र ने कलकत्ता नगर निगम की पद्धति में अनेक सुधार करवाये और शहर की उन्नति के लिए दानशीलता का परिचय दिया।[९]

क्रान्तिकारी लेखक- दृढ़निश्चय और चिन्ताशीलता की मूर्ति श्री सुभाषचन्द्र बोस अपने समय में क्रान्तिकारी लेखक के गुणों से मण्डित थे। इनके द्वारा बर्लिन में रहते हुए रचित 'दी इण्डियन स्ट्रगल १९२०-१९३४' नामक पुस्तक नवम्बर १९३४ में प्रकाशित हुई, जिसमें उन्होंने सन् १९२० से लेकर १९३४ तक के ब्रिटिश शासनकाल में भारतीयों पर किये गए अत्याचारों और शोषणों को लिखा[१०]।

इसके अतिरिक्त १८ नवम्बर, १९३७ को जब वे स्वास्थ्य में भारी गिरावट आने के कारण यूरोप गये तो उसी समय उन्होंने दस दिन की अवधि में 'एन इण्डियन पिलग्रिम' नामक ग्रन्थ की रचना भी की, जिसमें उन्होंने अपनी वंश-परम्परा के परिचय के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश पर भी प्रकाश डाला।

ऊर्जावान्- नवीन भारत के निर्माताओं में अग्रणी नेताजी सुभाषचन्द्र बोस देशभक्ति, ईमानदारी और शूरवीरता की मिसाल बनकर देश के लिए सर्वस्व समर्पित करते हुए अपने को न्यौछावर कर देते हैं। ४ जुलाई, १९४३ को रासबिहारी बोस द्वारा सिंगापुर में एक विशाल सभा का आयोजन किया जाता है जिसमें उनके अनुरोध पर पधारे सुभाषचन्द्र बो स को 'इण्डियन इण्डिपेण्डेंस लीग' की अध्यक्षता सौंपी जाती है तथा उन्हें आजाद हिन्द फौज का सर्वोच्च सेनापति नियुक्त किया जाता है। वे स्वतन्त्र भारत की अन्तरिम सरकार गठित करने सम्बन्धित अपने विचार व्यक्त करते हैं, जिसमें युवा क्रांतिकारी एवं ऊर्जावान् नायक द्वारा देश की स्वतन्त्रताहेतु ओजस्वी वाणी में उद्गार प्रस्तुत किये जाते हैं।[११]

ऊर्जावान् सुभाष सैनिकों को अपने उद्बोधन में कहते हैं कि मैं भारत की आजादी दिलवाने की प्रतिज्ञा करता हूँ यदि तुम सब मेरे वक्तव्य से सहमत हो तो वह दिन दूर नहीं है कि आजादी हमारी आँखों के सम्मुख दृष्टिगत होगी[१२]।

दृढनिश्चयी एवं मातृभूमि का सच्चा सेवक-

अंगरेजों की दमनकारी नीतियों के विरोधी सुभाषचन्द्र बोस दृढ़निश्चय के धनी एवं भारतमाता के सच्चे सैनिक थे। देश की आजादी के लिए उनकी नस-नस में रक्त उफनता रहता था। देश को ब्रिटिशशासन से मुक्त करवाने के लिए उन्होंने प्रख्यात प्रेरणाभरा उद्बोधन देते हुए कहा कि आजादी हमें उपहार में मिलने वाली वस्तु नहीं है, बल्कि आजादी तो त्याग और बलिदान से ही प्राप्त की जा सकती है। आजादी के लिए प्राणों की आहुति देनी पड़ती है। जो अपने हाथों से अपना सिर काटकर स्वाधीनता देवी की भेंट चढ़ा सके, उसे ही आजादी नसीब होती है[१३]।

नागपुर में हुए मध्य प्रान्त अधिवेशन में युवासंघ के अध्यक्ष पद को सुशोभित करते हुए आजादी के

८. ने० सुभाषचरितम्, २/३८ ९. वही, २/५५,५६ १०. वही, ३/४१ ११. वही, ८/११,८/१२
१२. वही, ७/१११ १३. वही, ७/११०

इतिहास में अंगरेजी सरकार से लोहा लेने वाले मील के पत्थर बने नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने अपने दृढ़निश्चयी एवं मातृभूमि के सच्चे सेवक होने का परिचय भारतीयों को सम्बोधित करते हुए दिया।[१४]

१६ मई,१९४३ को टोकियों में आगन्तुकों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि हमें तलवार का जवाब तलवार से देना होगा। स्वतन्त्रता का मूल्य त्याग ओर संघर्ष है। इसी के सहारे हम देशवासी अपने देश से ब्रिटिशराज को अन्ततोगत्वा बाहर निकाल फेंक सकते हैं[१५]।

सौम्य व्यक्तित्व- स्वाधीनता संग्राम के दौरान देश को गुलामी से मुक्ति दिलवाने की भारतवासियों में जागृति पैदा करने वाले सुभाषचन्द्र बोस शिष्टाचार, कृतज्ञ-भावना, शालीनता, सौहार्दपूर्ण व्यवहार, प्रेम और सौम्य व्यक्तित्व के धनी थे। आजाद-हिन्द-सेना के सेनापति जैसे अहम्-पद पर प्रतिष्ठित होने के बावजूद उनके मन में अहंकार की भावना किञ्चित् भी नहीं आई। धन्य है ऐसे सपूतों की माताएँ जिन्होंने ऐसे सौम्य व्यक्तित्व के धनी क्रान्तिवीरों को जन्म दिया है। इनकी सौम्यता एवं शालीनता सबके लिए प्रेरणाग्राही है। जापान में भी उनके व्यवहार एवं क्रान्तिकारिता की प्रशंसा प्रधानमंत्री टोजोन ने की। अपने स्वागत-सत्कार को देखकर भी उनके मन में घमण्ड नहीं जागा, बल्कि शालीनतापूर्वक सुभाष ने कृतज्ञता प्रकट की। आमन्त्रण के अनुसार संसद में सुभाषचन्द्र के पहुंचने पर टोजोन ने उनका स्वागत किया[१६]।

वस्तुतः उनकी वाणी में वह मधुरता, शालीनता और ओज था। उनकी वाणी एवं व्यवहार से समस्त जन मंत्रमुग्ध हो जाते थे।

लब्ध प्रतिष्ठित- स्वतन्त्रता-संघर्ष में सुभाषचन्द्र बोस जैसे महान् देशभक्त के योगदान के लिए राष्ट्र सदैव उनका ऋणी रहेगा। उनकी सामाजिक सम्बन्धों में प्रगाढ़ घनिष्टता थी। उन्होंने अपने प्रेरणादायी विचारों और ओजस्वी वाणी से भारतीयों को एक नई दिशा प्रदान की। देश की आजादी के लिये ऐसे प्रतिष्ठालब्ध क्रान्तिवीर ने विनम्रतापूर्वक मलाया में स्थित हिन्दीवासियों को इस प्रकार निवेदन किया कि आजाद-हिन्द-सेना का रिक्त खजाना देखते ही देखते पूर्ण हो गया[१७]।

नेता जी के प्रेरणा भरे उद्बोधन से आजाद हिन्द सैनिकों में मातृभूमि के लिए बलिदान करने की भावना जागृत हुई। ऐसे लब्धप्रतिष्ठित नेताजी भारतीय स्वन्त्रता के महान् योद्धा एवं देदीप्यमान नक्षत्र थे। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिये मनाए गए महोत्सब में तिरंगाध्वज उन्होंने फहराया, जिसमें सैनिकों, नागरिकों और महिलाओं ने भाग लिया। इस अवसर पर लब्धप्रतिष्ठित क्रान्तिकारी को पहनाई गई माला का मूल्य एक लाख था।[१८]

तेजस्वी नेतृत्व शक्ति- कुशल नायकत्व के धनी नेताजी सुभाषचन्द्र अनेक बार भारतवासियों द्वारा किये गए अधिवेशनों में सभापति एवं अध्यक्ष जैसे उच्चपदों पर मनोनीत हुए। जनवरी१९२३ में निर्मित स्वराज्य-पार्टी के अध्याक्ष पद पर जहां चितरञ्जन दास सुशोभित हुए थे, वहीं सुभाषचन्द्र बोस संगठन और प्रचारमंत्री नियुक्त हुए थे[१९]।

बंगाल के बेताज बादशाह देशबन्धु चितरञ्जन दास ने सुभाषचन्द्र की शैक्षणिक योग्यता एवं आई.सी.एस. स्तर की प्रशासनिक क्षमता को देखकर उन्हें नेशनल कॉलेज का प्रिंसिपल नियुक्त किया।

---

१४. ने० सुभाषचरितम्,१/१३२, २/१३४ १५. वही, ७/४१ १६. वही, ७/२०/२३
१७.वही, ८/३९;४३ १८. वही, ९/४३;४४ १९.वही, २/५२;५४

भवानीपुर स्थित उनके मकान को राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधियों के सञ्चालन का केन्द्र बनाया गया। उन्होंने सुभाषचन्द्र को 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक दल' नामक युवाओं की उत्साही संस्था का कप्तान बनाया। 'बंगाल कथा' नामक पत्रिका के सम्पादक का जिम्मा सौंपा गया। उन्हें बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की सदस्यता दी गई और दल के प्रचार-प्रसार का पूर्ण दायित्व उनके दृढ़स्कन्धों पर सौंपा गया[२०]।

नवम्बर १९२६ में जेल में होते हुए भी उन्होंने बंगाल प्रान्तीय विधानमण्डल का चुनाव लड़ा और कलकत्ता निर्वाचन क्षेत्र से वे भारी मतों से विजयी हुए। दिसम्बर, १९२७ में एम.ए. अंसारी के नेतृत्व में मद्रास में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसमें साइमन कमीशन का पूर्ण रूप से विरोध करना था। इस अधिवेशन में सुभाषचन्द्र को कांग्रेस का महासचिव नियुक्त किया गया[२१]।

इसी प्रकार ३ मई, १९२८ को पूना में महाराष्ट्र प्रदेश कांग्रेस का छठा अधिवेशन हुआ, जिसमें कुशल नेतृत्वशक्ति के कारण उन्हें वहां भी सभापति बनाया गया[२२]।

दिसम्बर १९२८ में अखिल भारतीय नौजवान सभा का तृतीय अधिवेशन नागपुर में हुआ। इस युवा संघ के सभाध्यक्ष भी सुषाषचन्द्र बोस ही थे[२३]।

२२ अगस्त, १९३० को सुभाषचन्द बोस कलकत्ता के मेयर चुने गये थे। कलकत्ता के मेयर के रूप में उन्होंने कॉरपोरेशन भवन पर राष्ट्रीय ध्वज फहराया तथ कर्मचारियों के साथ जुलूस बनाकर कलकत्ता मैदान में ब्रिटिश प्रशासन की क्रूरता के विरोध में प्रदर्शन किया था।[२४]

८ जनवरी, १९३८ को उन्हें पुनः कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया। २३ जनवरी, १९३८ को हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन तापी नदी के तट पर आयोजित किया गया। हरिपुरा में उन्होंने कांग्रेस अधिवेशन में पुनः अध्यक्ष पद को सुशोभित किया[२५]।

२९ जनवरी, १९३९ को त्रिपुरी में हुए कांग्रेस अधिवेशन में सुभाषचन्द्र की विजय ने महात्मा गांधी और जवाहर लाल नेहरु जैसे आदर्श व्यक्तियों को भी विक्षुब्ध कर दिया। इस प्रकार वे यहाँ भी कुशल नेतृत्वशक्ति के कारण पुनः कांग्रेस समिति के अध्यक्ष पद पर निर्वाचित हुए। ३ जुलाई, १९४० को सुभाषचन्द्र बोस ने कलकत्ता स्थित हॉलवेल स्मारक को तोड़ने का ऐलान कर दिया। इस ऐलान से बौखलाकर ब्रिटिश सरकार ने २ जुलाई, १९४० को ही उन्हें गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया। यह उनकी ग्यारहवीं गिरफ्तारी थी। सरकार ने उन पर आजीवन कारावास की धारा लगा दी, परन्तु उसी समय केन्द्रीय विधानमण्डल के सदस्य चुने जाने पर उनकी कैद अस्थायी कैद में बदलनी पड़ी[२६]।

४ जुलाई, १९४३ को रासबिहारी बोस ने सिंगापुर में एक विशाल सभा का आयोजन किया। यहाँ सुभाषचन्द्र बोस को इण्डियन इण्डिपेण्डेंस लीग के अध्यक्ष पद पर निर्वाचित किया गया और आजाद हिन्द फौज का सर्वोच्च सेनापति भी नियुक्त किया गया।[२७]

कष्टसहिष्णु- राष्ट्रीय एकता और सद्भावना में अपना सर्वस्व समर्पित करने वाले नेताजी का अप्रतिम बलिदान हमारे लिये शाश्वत प्रेरणा का स्रोत है। वे अदम्य साहस, शौर्य और क्रान्तिकारी विचारों की मशाल थे। २६ जनवरी, १९३४ को स्वतन्त्रता दिवस मनाने के लिए सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में एक जुलूस

२०. ने० सुभाषचरितम्, २/२२ २१. वही, २/१०४ २२. वही, २/११५;२/११६
२३. वही, २/१३०; १३१ २४. वही, २/१३७;२/१३८ २५. वही, ३/१०२;१०७
२६. वही, ४/६० २७. वही, ७/६०; ६३/६४

निकाला गया। जुलूस पर पुलिस द्वारा लाठीचार्ज किया गया जिसमें वृद्ध नेता लाला लाजपतराय घायल हो गए। अतिक्रूर सार्जण्ट द्वारा जूलूस का नेतृत्व कर रहे सुभाषचन्द्र पर भी लाठीचार्ज किया गया, जिसमें सुभाषचन्द्र बोस घायल हो गये। उन्हें लाल बाजार के पुलिस थाने में ले जाया गया और अगले दिन छ: माह की सख्त कैद की सजा दे दी गई[२८]।

१ जनवरी, १९३२ को पूरे देश में सविनय अवज्ञा-आन्दोलन प्रारम्भ करने की घोषणा की गई। २ जनवरी को ही नेताजी को गिरफ्तार कर लिय गया। जेल में उनके स्वास्थ्य में गिरावट आ गई। जेल में उन्होंने अनेक कष्टों को सहन किया परन्तु ब्रिटिश सरकार से कोई समझौता नहीं किया[२९]।

नवम्बर १९२१ में हुए राष्ट्रव्यापी असहयोग आन्दोलन से सरकार की जड़ें हिल गईं और १० दिसम्बर, १९२१ को सुभाषचन्द्र और देशबन्धु चितरञ्जन दास दोनों को कलकत्ता में गिरफ्तार कर लिया गया। दोनों को छ: माह के कारावास की सजा दी गई[३०]।

इसी प्रकार २५ अक्टूबर, १९२४ को सुभाषचन्द्र पर मिस्टर 'डे' नामक अंगरेज की हत्या करने के लिए गोपीनाथ साहा को उकसाने का आरोप लगाकर ब्रिटिश सरकार ने अलीपुर कारावास में डाल दिया।[३१]

जेल में सुभाषचन्द्र के अंग-अंग में ज्वर बस गया। मेडिकल बोर्ड के सदस्यों ने उनका स्वास्थ्य परीक्षण करके जेल से हटाने की सिफारिश की, परन्तु ब्रिटिश सरकार टस से मस नहीं हुई। अन्तत: शारीरिक और मानसिक विघ्नों को सहन करते हुए नेताजी १६ मई, १९२७ को बिना किसी अभियोग के अट्ठाईस माह की सजा काटकर मुक्त हुए। ३ जुलाई, १९४० को नेताजी ने कलकत्ता स्थित हॉलवेल स्मारक को तोड़ने का ऐलान कर दिया। इस ऐलान से सरकार बौखला गई और २ जुलाई, १९४० को ही उन्हें गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया।[३२]

सरकार ने उन्हें ५ दिसम्बर, १९४० को जेल से निकालकर पैतृक घर पहुँचा दिया परन्तु घर पर पुलिस का सख्त पहरा लगा दिया गया। उनके बाहर निकलने एवं किसी से मिलने तक की पाबन्दी लगा दी गई। इस प्रकार सुभाषचन्द्र ने अपने घर में रहकर भी अनेक शारीरिक और मानसिक यातनाओं को सहन किया।[३३]

परन्तु वे अपनी बुद्धिचातुर्य से प्रहरियों की नजरों में धूल झोंककर २६ जनवरी, १९४१ को घर से गायव हो गये। रास्ते में पहाड़ों की चढ़ाई, ढलान संकड़ी व कंटीली झाड़ियों की पगडण्डी आदि को पैदल यात्रा कर बिताया।[३४]

पुलिस की नजरों से बचने के लिए भगतराम के हाथ नेताजी काबुल में उत्तमचन्द मल्होत्रा के मकान में सैंतालिस दिन तक छिपकर बैठे रहे। वे लौकिक सुखों को नजरअन्दाज करके भारत को स्वतन्त्र कराने का संकल्प लेकर मौत से खेलते हुए भारत से गोपनीय तरीके से भागकर जर्मनी जा पहुंचे। विदेश में रहते भी सुखद अवसरों का लाभ न लेकर आजीवन देश की आजादी का भूत सवार लिए अनेक कष्टों को हँसकर सहते रहे। धन्य हैं ऐसी माताएँ, जिन्होंने ऐसे क्रान्तिवीरों को अपनी कोख से जन्म दिया। वस्तुत: नेताजी भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के महान् योद्धा एवं देदीप्यमान नक्षत्र थे।

२८. ने० सुभाषचरितम्, २/१४०;१४१
२९. वही, २/१६३
३०. वही, २/२६;२७
३१. वही, २/७५
३२. ४/५६;५७
३३. वही, ४/७०
३४. वही, ४/१२१

कुशाग्र बुद्धि:- भारत का यह क्रांतिकारी जिसके एक नारे ने ही ब्रिटिश हुकूमत की जड़ों को हिलाकर रख दिया और जिसके एक इशारे पर नवयुवकों ने मातृभूमिहेतु मर मिटने की कसमें खायीं, ऐसे वीर सपूत नेताजी बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभाशाली थे। शैशवावस्था में किसी तपस्वी ने उनकी कुण्डली देखकर कुशाग्रबुद्धि वाला बतलाया और भविष्यवाणी कर दी कि यह बालक शासक या प्रतापवान् ही होगा।[३५]

पाठशाला में भी उनकी गणना मेधावी छात्रों में होती थी। मैट्रिक की परीक्षाा में उन्होंने विद्यापीठ स्तर पर द्वितीय स्थान प्राप्त किया था।[३६]

बाईस वर्ष की आयु में सुभाष ने प्रथम श्रेणी में बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण की और कलकत्ता विश्वविद्यालय में द्वितीय स्थान प्राप्त किया था।[३७]

अक्टूबर १९१९ में वे अपने पिता जानकीनाथ की आज्ञा से भारतीय सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी के लिए लन्दन चले गए। १५ सितम्बर, १९२० को आए परीक्षा परिणाम में उन्होंने चतुर्थ स्थान प्राप्त किया। उनकी कुशाग्रबुद्धि के परिणामस्वरूप उनके परिवार में खुशी की लहर दौड़ गई।[३८]

परन्तु उनकी नसं-नस में भारतीय स्वाधीनता का भूत स्वार था। उन्होंने सोचा कि स्वाधीनता के लिए संघर्ष, सेवा तथा त्याग किये बिना विदेशी-सत्ता से हम स्वतन्त्र नहीं हो सकते, इसलिए उन्होंने देश-सेवा का प्राण लेते हुए आई.सी.एस. जैसी सुखोपभोगी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया।[३९]

इस प्रकार महान् योद्धा और देदीप्यमान नक्षत्र का सम्पूर्ण जीवन ही नि:स्वार्थ भावयुक्त भारत माँ को समर्पित रहा।

ओजस्वी वक्ता- भारतीय क्रान्तिकारियों में अग्रणी महाकाव्य के नायक ओजस्वी वक्ता थे। मातृभूमि-हेतु प्राणोत्सर्ग के लिए सदा तत्पर रहने वाले स्वनामधन्य नेताजी की वाणी में इतना ओज था कि श्रोता उनकी वाणी सुनकर मंत्रमुग्ध हो जाया करते थे। वे अपनी ओजस्वी वाणी से जनसमूह को बाँध लेने में समर्थ थे। बैंकाक और सायगाव में हिन्दी-स्वातन्त्र्य-संघ को उन्होंने इस प्रकार सम्बोधित किया कि सभी मंत्रमुग्ध हो उठे।[४०]

इस प्रकार क्रान्तिकारी विचारधारा के देशभक्तों में आप प्रथम पंक्ति में हैं। आशा और तेज से युक्त मुखमण्डल वाले नेताजी ने शारीरिक, मानसिक और पारिवारिक समस्याओं को गौण मानकर स्वयं को देश की स्वतन्त्रता-हेतु समर्पित कर दिया।

महाकाव्य में प्रस्तुत सुभाषचन्द्र बोस की बुद्धिमत्ता और शौर्य के अतुलनीय सामञ्जस्यपूर्ण कौशल का निरूपण सहृदयों को दाँतों तले अंगूली दबाने को मजबूर करता है। महाकाव्य के नायक का राष्ट्रीय एकता एवं सद्भावना में किया गया योगदान अक्षुण्ण रहेगा।

-प्रवक्ता (संस्कृत-विभाग) डॉ. बी.आर. ए. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, श्रीगंगानगर

---

३५. ने० सुभाषचरितम्, १/६ ३६. वही, १/२३;२४ ३७. वही, १/७७
३८. वही, १/११५;११६;१/११७ ३९. वही, १/१५०;१५१
४०. वही, ७/१२४; १२५; ७/१२६

संस्कृत-साहित्य में श्री गुरुगोबिन्द सिंह जी का योगदान

–सुश्री रजनी बाला (शोधछात्रा)

दशम गुरु श्रीगोबिन्द सिंह जी की अन्य भाषाओं के साथ-साथ संस्कृत भाषा के प्रति भी अटूट आस्था थी। उन्होंने अपनी समस्त काव्य-रचनाओं के आरम्भ तथा अन्त में संस्कृत-ग्रन्थों की परम्परागत शैली को सहर्ष स्वीकार किया है। जैसे-''इति स्री वचित्र नाटक ग्रंथे सरबकाल की बेनती बरननं नामु चौदम समोधि आइ समापतम सतु सुभम सतु'' (दशम ग्रन्थ, भाग-I)।

''इति स्री मारकंडे पुराने स्री चंडी चरित्र उकति बिलास महश्वासुर बधहि नाम दुती आधि आइ'' (दशम ग्रन्थ, भाग-I)। संस्कृत की इस पौराणिक शैली के प्रयोग का मुख्य कारण यह है कि उन्होंने न केवल स्वयं संस्कृत के पौराणिक ग्रंथों का अध्ययन किया था वरन् अपने शिष्यों को भी इस प्रकार के अध्ययन के लिए प्रेरित भी किया। उनकी काव्य-कृतियों में संस्कृत के तत्सम, अर्द्धतत्सम और तद्भव शब्दों का प्रयोग विशेष रूप से देखने को मिलता है।

तत्सम शब्द-

गुरु गोविन्द सिंह जी के काव्य में व्यावहारिक तत्सम शब्दों की भरमार है। विभिन्न विषयों से सम्बन्धित पदों में तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए जैसे-

१. जै जै जग कारण सृष्टि उबारण मम प्रतिपारण जै तेगं (विचित्रनाटक छन्द-१)
२. नृपति सुंभ को भ्रात हौं, कहौं वचन सकुचात। (चण्डी चरित्र उक्ति विलास छन्द ८२)
३. शस्त्र धार करि करन में, चमू चाल कर दीन। (वही छन्द ३७)
४. नमो देव देवं मनो खड्ग धारं। सदा एकरूपं सदानिरबिकारं। (विचित्र नाटक, दशम ग्रंथ-भाग-I)

अर्द्धतत्सम शब्द-

अर्द्धतत्सम शब्दों का प्रयोग उच्चारण की सुविधा के लिए किया जाता है। ये शब्द संस्कृत से ही लिए जाते हैं किन्तु मुख-सुख जैसे कारणों से इनकी कठोर ध्वनियों को नया रूप दे दिया जाता है। गुरु गोबिन्द सिंह के शब्दभंडार में सबसे अधिक संख्या अर्द्धतत्सम शब्दों की ही है। जैसे-

१. त्रिपति सुंभ को भ्रात हौं। कह्यो बचन सकुचात। (चण्डी चरित्र उक्ति विलास द. ग्र. भाग-I)
२. बिआकल होतु धरन जब भारा। काल पुरख पहि कहत पुकारा। (विष्णु अवतार, दशम ग्रंथ भाग-I)
३. दुशट हरना स्रिशट करना द्याल लाल गोविन्द। (अकालस्तुति द. ग्रं. भाग-I)

इन छंदों में त्रिपति (नृपति), बिआकल (व्याकुल), दुशट (दुष्ट), स्रिशट (सृष्टि) आदि

अर्द्धतत्सम शब्द ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुरूप प्रयुक्त होते हैं। यदि दशम ग्रन्थ में संकलित सभी काव्य-कृतियों के समस्त अर्द्धतत्सम शब्दों को ढूंढा जाए तो निश्चय है कि ऐसे शब्दों का एक विशाल कोश तैयार हो जाता है।

तद्भव शब्द-

हिन्दी के तद्भव शब्द संस्कृत के तत्सम अथवा मूल शब्दगत ध्वनिसम्बन्धी विकारों के परिणाम हैं। इनमें से कुछ शब्द ऐसे हैं जो अपभ्रंश और प्राकृत-भाषाओं से होते हुए ब्रजभाषा में आकर और अधिक विकृत हुए हैं तथा कुछ शब्द ऐसे हैं जो संस्कृत से आकर इस रूप में बदल गए हैं। किसी भी भाषा की निजी सम्पति इन्हीं शब्दों के द्वारा समृद्ध होती है क्योंकि इन शब्दों का निर्माण जनसाधारण के अनुरूप स्वाभाविक रीति से होता है। गुरु गोबिन्द सिंह के काव्य में ब्रजभाषा का माधुर्य व्याप्त है इसलिए उसमें तद्भव शब्दों का विपुल भण्डार स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जैसे-

१. रीझ रहे बन के खग अउ म्रिग रीझ रहे धुन जा सुन पाई। (कृष्ण अवतार द. ग्रं. भाग-I)
२. कोप भरयो हम पै मघवा हमरी तुम रच्छ करो उठि सइया। (वही)

(ख) प्राकृत-अपभ्रंश शब्दावली-

संस्कृत के पश्चात् भारतीय वाङ्मय की दो महत्त्वपूर्ण प्राचीन भाषाएं प्राकृत और अपभ्रंश आती हैं। इनका ब्रजभाषा के साथ जितना निकट का सम्बन्ध है उतना किसी अन्य भाषा का नहीं दिखाई देता। यही कारण है कि इन भाषाओं के अनेक शब्द अपने विकसित और मूल दोनों ही रूपों में इस भाषा के भीतर इतने घुल-मिल गए हैं कि अनायास ही उन्हें पृथक् करके नहीं रखा जा सकता। गुरु गोबिन्द सिंह ने अस्त्रों-शस्त्रों की झंकार, योद्धाओं की मार-काट, रण-भूमि के कोलाहल तथा शत्रुओं की दुर्दशा को चित्रित करने के लिए प्राकृत-शब्दों में 'णकार' और 'द्वित्व' की प्रकृति को विशेष रूप से ग्रहण किया है। चण्डी-चरित्र उक्ति विलास, चौबीस अवतार, विचित्र नाटक, रुद्रावतार तथा ब्रह्मावतार में तो प्राकृत-अपभ्रंश शब्दावली का बहुलता से प्रयोग हुआ ही है, इसके अतिरिक्त स्तुति परक रचनाओं में भी इनकी उपेक्षा नहीं की गई-

१. इतै सिंघ गज्ज्यो। महा संख बज्ज्यो। (चण्डी चरित-द्वितीय-दशम ग्रंथ भाग-I)
२. गजा जूह गज्जे। सुभं संज सज्जे। (परशुराम अवतार, दशम ग्रन्थ, भाग-I)
३. बज्जे निशंग । गज्जे निहंग। छुट्टै क्रिपान। लिट्टै जुआन। (विचित्र नाटक, दशम ग्रं. भाग -I)

संस्कृत-आचार्यों ने आकार एवं बनावट की दृष्टि से काव्य के मुख्य रूप से दो भेद स्वीकार किए हैं-महाकाव्य अर्थात् प्रबन्धकाव्य तथा खण्डकाव्य। गुरु गोबिन्द सिंह ने प्रबन्ध-काव्य के दोनों भेदों को एवं मुक्तक काव्य को उसकी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ अपनाया है। दशम गुरु ने अपने युग की पीड़ित जनता की भुजाओं में शक्ति एवं नवजीवन का संचार करने के उद्देश्य से ऐसी पौराणिक गाथाओं का चयन किया जिनमें

हिन्दूजनता की पूर्ण आस्था विद्यमान थी। कृष्णावतार, रामावतार तथा विचित्र नाटक को महाकाव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है तथा चण्डी चरित्र, उक्ति विलास तथा चण्डी-चरित्र द्वितीय को खण्ड-काव्य कहा जा सकता है।

सिक्खों के दशम-गुरु गुरु गोविन्द सिंह ने अत्याचार, दमन, शोषण, अज्ञान, अंधकार, अपमान और पराजय की इस भयानक लड़ाई में 'शमशीर के शौर्य' के साथ 'कलम की शक्ति' को भी प्रदर्शित किया।

श्री गुरु गोविन्द सिंह का संस्कृतकाव्य वर्ण्य-विषय, काव्य-रचना शैली, कवि-प्रतिभा, भाषा-प्रयोग आदि नाना दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण तथा विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। मानवजाति के पोषक तथा भारतीय संस्कृति के अनुरागी गुरु गोबिन्द सिंह किसी एक भाषाविशेष के पक्षपाती नहीं थे अपितु वे तो मानवधर्म, न्याय एवं संस्कृति के संरक्षक धर्मगुरु थे। परिस्थितियों से विवश होकर ही उन्हें भक्ति में शक्ति को सम्मिलित करना पडा। उन्होंने हिन्दूजाति की प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता को जीवित रखने के लिए तथा हिन्दुओं की मृतप्राय: चेतना तथा निराशा और हताश मानसिकता में जागरण का मंत्र फूँकने के लिए संस्कृत-साहित्य को अपना मुख्य माध्यम बनाया।

संस्कृतसाहित्य का अध्ययन एवं श्रवण करने से भारतीय संस्कृति के विभिन्न तत्त्व उनके व्यक्तित्व के अभिन्न अंग बन गए थे। यही कारण है कि मुगल शासकों के भय से आतंकित हिन्दुओं को उन्होंने संस्कृत की पौराणिक गाथाओं के माध्यम से आलोकित कर, उनकी सुप्तावस्था में पड़ी हुई शक्ति को जागृत किया। परिस्थितियों की नजाकत को समझकर गुरु जी ने शस्त्रों के साथ-साथ शास्त्रों को भी धारण करना आवश्यक समझा। धर्म-युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए वे चण्डी की स्तुति कर वरदान प्राप्त करते हैं। वीर योद्धा होने के साथ-साथ वे एक आध्यात्मिक पुरुष भी थे। उनके ब्रह्मसम्बन्धी विचार अद्वैतवादियों के अनुरूप हैं। वस्तुत: गुरु गोबिन्द सिंह ब्रह्म के सगुण एवं निर्गुण रूप में भेद नहीं मानते। अकाल स्तुति, चण्डी-चरित्र, ब्रह्मावतार, कृष्णावतार, रामावतार आदि विभिन्न रचनाओं में उन्होंने ब्रह्म के साकार रूप का भी वर्णन किया है।

अखिल मानवजाति के संरक्षक श्री गुरु गोविन्द सिंह जी अद्‌भुत एवं विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न महायोद्धा के साथ-साथ महाकवि भी थे। कवि का मुख्य कर्म-अपने काव्य के माध्यम से समूची मानव जाति को एकता के सूत्र में बाँधना तथा उसे अज्ञान की अँधकारमयी खाई की ओर अग्रसर होने से रोकना। दशम गुरु गोबिन्द सिंह जी ने इसी तत्त्व से प्रेरित हो, सांसारिक आकांक्षाओं से ऊपर उठकर, लौकिक प्रलोभनों को त्यागकर, लोकमंगलार्थ काव्यसृजन कर उसका उपयोग मानव-समाज की सुरक्षा चट्टान के रूप में किया। वे जिस प्रकार शस्त्रों का प्रयोग करने में कुशलहस्त थे, उसी प्रकार लेखनी का वार भी अत्यन्त पटुता से करते थे।

संस्कृत-साहित्य के प्रति विशेष अभिरुचि

एवं दृढ़ आस्था होने के कारण उन्होंने मानव-जीवन में सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना का संचार करने के लिए तथा मृतप्राय जड जनता को गति प्रदान करने के लिए उन्हीं की (संस्कृत साहित्य की) पौराणिक पृष्ठभूमि का भरपूर प्रयोग किया। अपने काव्य के माध्यम से विभिन्न नवीन मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा भी की। मुगल शासकों से युद्ध करते रहने के कारण दशम गुरु जी का अधिकांश समय रण-क्षेत्र में व्यतीत होता था, किन्तु इन संघर्षमयी स्थितियों के बीच भी उनका संस्कृत साहित्य के प्रति लगाव (प्रेम) कभी शिथिल नहीं हुआ। उनकी अलौकिक काव्य-प्रतिभा एक दिव्य प्रकाशपुंज के समान प्रकट हुई और जन-जन के हृदय में अपनी झलक व्याप्त कर गई। अत: यह कहने में रंचमात्र भी संकोच नहीं होता कि दशम गुरु संस्कृत के प्रतिभाशाली कवियों में अक्षुण्ण स्थान रखने वाले अमर गुरु कवि हैं। दशम गुरु स्वयं श्रेष्ठ कोटि के साहित्यकार होते हुए भी, अन्य गुणी कवियों और विद्वानों का उचित आदर-सत्कार करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। उनका दरबार विभिन्न विद्वानों के समागम का मुख्य केन्द्र था, जहाँ पर साहित्यिक एवम् आध्यात्मिक चर्चाओं का वातावरण सदैव छाया रहता था। गुरु जी ने 52 कवियों को आश्रय प्रदान कर, उनसे संस्कृत के आधारभूत पौराणिक एवं शास्त्रीय ग्रन्थों का भाषानुवाद करवाया। अपने दरबारी कवियों की मौलिक एवं अनूदित कृतियों को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से दशम गुरु ने एक दीर्घकाय ग्रन्थ 'विद्याघर' का निर्माण करवाया, किन्तु दुर्भाग्यवश आनन्दपुर को छोड़ते समय इस ग्रन्थ का एक बहुत बड़ा अंश सिरसा नदी में बहकर नष्ट हो गया।

श्री गुरु गोविन्द सिंह एक महामानव के रूप में जनता के सम्मुख प्रस्तुत हुए। वे केवल सिख सम्प्रदाय के ही गुरु नहीं थे, वरन् सम्पूर्ण मानव जाति को धर्म, वीरता एवं आत्मसम्मान के लिए जीने का सन्देश देने वाले अमर गुरु थे। इतने महान् व्यक्तित्व को किसी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। दशम-गुरु मानवतावादी धर्म के पोषक थे इसलिए उन्होंने जाति के गौरव शून्य होते हुए संस्कारों को जीवित रखने के लिए तलवार की शक्ति के साथ कलम की शक्ति का भी भरपूर प्रयोग किया। जीवनभर रण-भूमि में व्यस्त रहते हुए भी वे ईश्वर की भक्ति को कभी विस्मृत नहीं कर पाए। यही कारण है कि उन्होंने अपनी समस्त काव्य-रचनाओं में आदिपुरुष के अविनाशी, निराकार, अगोचर रूप को अत्यन्त मनोयोग के साथ अभिव्यक्त किया है। उनकी चिन्तनधारा आज भी मानवजाति के उत्थान में सहायक है। अखिल मानवजाति के संरक्षक श्री गुरु गोविन्द सिंह अद्भुत एवं विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न महाकवि थे।

- गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी, अमृतसर।

संस्कृतिः साहित्य को संस्कारित करती है

–श्री महेन्द्र कुमार (शोधछात्र)

साहित्य एवं संस्कृति नित्य सहचर हैं। क्षणभर भी एक दूसरे से नहीं बिछुड़ते। जैसे-जैसे संस्कृति का विकास होता है वैसे-वैसे सांस्कृतिक तत्त्वों को काव्यकलाओं में आदर्शीकृत करके सामान्य लोगों के समक्ष स्थापित किया जाता है। साहित्य ने संस्कृति के सैद्धान्तिक पक्ष के व्यावहारिक रूप को प्रदर्शित किया है।

पुरातन साहित्य के सम्यक् ज्ञानहेतु उससे सम्बन्धित संस्कृति का ज्ञान नितान्त अपेक्षित है। वस्तुतः कालक्रम से न केवल वस्तुओं का स्वरूप परिवर्तित होता है अपितु उनकी उपयोगिता में भी वृद्धि और ह्रास हो जाता है। इस लिए साहित्य में शब्दों का अभिप्राय भी परिवर्तित होता है। जैसा कि इस यान्त्रिक युग में घोड़े (अश्व) का कम महत्त्व रह गया है। यही अश्व प्राचीन एवं वैदिक युग में ऐश्वर्य एवं स्फूर्ति का साधन था। प्राचीन साहित्य में प्रयुक्त अश्व शब्द के सम्यक् ज्ञानहेतु अर्थशास्त्र का अश्वाध्यक्ष नामक प्रकरण अवलोकनीय है जिससे उस काल में अश्व की महिमा योग्यता एवं उपयोगिता विषयक जानकारी मिलती है। इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में प्रयुक्त ऋषि, ब्रह्मचारी राजोपनमन आदि शब्दों का वास्तविक अर्थ आधुनिक अर्थों की अभिव्यक्ति का परिचय देने में समर्थ नहीं है।

भारतीय साहित्य में विभिन्न युगों की सांस्कृतिक प्रवृत्तियां प्रतिबिम्बित होती हैं। कथावस्तु की दृष्टि से सम-साम्प्रदायिक नायकों का चरित्र कवियों द्वारा प्रायशः स्वीकार नहीं किया गया। चरित्रनायकों के अन्वेषणहेतु वे पुराण इतिहास आदि का आश्रय लेते रहे। तथापि युग की प्रवृत्तियों एवं युग के आदर्शों का सम्यक् प्रभाव भारतीय साहित्य में विद्यमान है। पुराण इतिहासादि में वर्णित असंख्य नायकों में से किन्हें आधार बना कर काव्य की रचना की जाए ऐसा प्रश्न उपस्थित होने पर, कवियों ने उसी नायक को आधार बनाया,जिसका आदर्श समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ। अभिमत नायक के जीवन में भी कौन-सा पक्ष युगविशेष की प्रवृत्तियों एवं अभिरुचियों के अनुकूल देखते हुए कवि वर्ण-विषय की और प्रवृत्त हुए।

इस प्रकार के कवियों की रचनाएं लोकप्रिय एवं शाश्वत बन गईं। कथावस्तु का परिवर्तन, उसमें नवीन-नवीन कल्पनाओं का समावेश तथा वर्णनों का संयोजन इत्यादि प्रवृतियां कवियों द्वारा लोकरुचि का अतिक्रमण करके अङ्गिकार की गईं। इस प्रकार प्राचीन साहित्य की गरिमा का आकलन करने में प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं में लोकचरित्र का अनुसन्धान दिखाई देता है। वर्तमान काल में समाज द्वारा हमारी सांस्कृतिक परम्परा विस्तृत कर दी गई है। फलतः प्राचीन

साहित्य की निधि हमारे समक्ष प्रस्फुटित नही हो रही है। यदि प्राचीन साहित्य के संरक्षण के लिए कुछ प्रयास नहीं किया गया तो उससे अनुसरण की गई संस्कृति अवश्य ही आत्मसात् की जानी चाहिए।

वैदिक साहित्य में कर्मयोग का बीजारोपण एवम् अंकुरण हुआ। महाभारत में उसका वृक्ष पल्लवित एवं पुष्पित हुआ। धर्म की रक्षाहेतु अपने सर्वस्व समर्पण का आदर्श वाल्मीकि ने उपस्थापित किया। राम के उदात्त सात्विक भाव को रामायण में इस प्रकार दर्शाया है :-

पित्रा दत्तां रुदन् रामः प्राङ् महीं प्रत्यपद्यत।
पश्चाद्वनाय गच्छेति तदाज्ञां मुदितोऽग्रहीत्।।

भागवत पुराण का राष्ट्रिय संस्कृति के उत्थान में विशेष योगदान रहा है। यहां आधिभौतिक वृत्तियों की हेयता का भली भान्ति निर्णय करते हुए लिखा गया कि- मनुष्यों को संसार में जो-जो वस्तु अधिक प्रिय है उसका संग्रह ही उसके दुःख का कारण है। जो बुद्धिमान् मनुष्य यह भाव समझ कर अकिंचन भाव से रहता है, शरीर की बात तो दूर मन से भी किसी वस्तु का संग्रह नहीं करता उसे अनन्त सुख स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति होती है। (भागवत २,९२)

प्राचीन काल में व्यक्तित्व का विकास वर्णाश्रम विधान से नियमित किया जाता था। उसी विधान का कवियों द्वारा साहित्य में पद-पद पर सरल रूप में लोगों की इच्छानुरूप निरूपण किया गया। इस प्रसङ्ग में भर्तृहरि का यह कथन अपनी एक विशेषता रखता है कि- मैं ज्यों-ज्यों कुछ जानने लगा त्यों-त्यों मैं सर्वज्ञ हूँ इस अभिमान से मेरा मन हाथी की तरह मदान्ध हो गया। परन्तु ज्यों ही बुद्धिमानों की सङ्गति से मुझे कुछ ज्ञान हुआ त्यों ही मेरा सारा गर्व ज्वर की तरह उतर गया और मैं मूर्ख हूँ ऐसा मुझे प्रतीत होने लगा। (नीतिशतक ८)

एक स्थान पर भर्तृहरि ने कर्मण्यता की प्रशंसा करते हुए राष्ट्र के प्रति यह उद्बोधन करते हुए कहा कि- अधम मनुष्य विघ्न के भय से कार्य प्रारम्भ ही नहीं करते। मध्यम स्वभाव के मनुष्य विघ्न पड़ने पर प्रारम्भ किये कार्य को छोड़ देते हैं परन्तु उत्तम स्वभाव के मनुष्य बार-बार विघ्नों से प्रताड़ित होने पर भी प्रारम्भ किये कार्य को (बिना समाप्त किये नहीं छोड़ते। नीतिशतक-२७)

साहित्य मूलतः आध्यात्मिक दर्शन से उद्भूत हुआ। वस्तुतः काव्य एवं साहित्य ब्रह्मविद्या में रत है वाग्-अर्थ क्रमशः शिव एवं शक्ति का वाचक हैं। शिव शक्ति की समरसता ही साहित्य है। रस इनका प्राण अथवा आत्मा है यह रस स्वयंप्रकाश ब्रह्मतत्त्व का ही नामान्तरण है। इस साहित्य का दार्शनिक संस्कृति से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारतीय संस्कृति की दार्शनिक धारा वैदिक साहित्य में महाभारत भगवद्गीता आदि ग्रन्थों में उपबृंहण होकर चलती है। ऋग्वेद के ऋषियों द्वारा परमात्मा की सर्वात्मकी सत्ता भली-भांति जानी गई है। "पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्" इस प्रकार की उनकी विचारधारा रही। अखिल ब्रह्माण्ड में ईश्वर का वास है यह कल्पना

आचारशुद्धिः की भी जन्मदात्री रही है जैसा कि यजुर्वेद में कहा गया है:-

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

अर्थात् अखिल भूमण्डल व्याप्त चराचर जगत् के प्राणियों के प्रति वेद भगवान् का व्यापक एवं पवित्र सन्देश है कि इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी यह जडचेतन स्वरूप चराचर जगत् तुम्हें दिखाई दे रहा है, वह सब कुछ सर्वाधार, निर्विकार, सर्वाधिपति, सर्वशक्तिमान् उस परब्रह्म परमात्मा से सर्वतः व्याप्त है एवं सदैव तथा सर्वत्र उन्हीं से परिपूर्ण है। अर्थात् उस चराचर जगत् का कोई भी अंश उस ब्रह्म परमात्मा से रहित नहीं है। (ईशावास्योपनिषद्, मंत्र-२)

उपनिषदों में ब्रह्मज्ञान की सर्वातिशायिनी विजय हुई थी। यह आधिभौतिक प्रवृत्तियों पर अध्यात्म की विजय थी। उपनिषदकारों ने एक स्वर में उद्‌घोष किया:-

उठो, जागो श्रेष्ठ महापुरुषों को पाकर उनके द्वारा उस परब्रह्म परमेश्वर को जान लो। (वही, वल्ली-३, अध्याय-१ (मंत्र १४) ब्रह्म सत्य का पर्याय है ऐसा मानकर वे कहते हैं:-सत्य की जय होती है असत्य की नहीं ।

महाभारत तो भारतीय संस्कृति का कोष है इस ग्रन्थ में मोक्षप्राप्ति प्रथम सोपान की तरह कही गई है: तथा उस परमशक्ति को प्राप्त करना ही परमलक्ष्य मानते हुए कहा गया कि -

''मन, वाणी, एवं कर्म से जब पाप नहीं किया जाता, समस्त प्राणियों में जब किसी भी प्रकार का पाप नहीं किया जाता तो ऐसा व्यक्ति ब्रह्म की प्राप्ति करता है। (महाभारत)

इस प्रकार (क) सौ पुत्रों से सत्य श्रेष्ठ है,'' (ख) जो प्रतिक्षण सरल रहता है उसे ब्राह्मण कहते हैं। (ग) जैसा स्वयं के साथ व्यवहार किया जाता है वैसा ही सभी प्राणियों के साथ करना चाहिए, (घ) सत्य वचन कल्याणकारी होता है। (ङ) जो स्वयं के लिए अहितकर है वह दूसरों के साथ न करें, इत्यादि। महाभारतकार का यह निश्चित रूप से मानना है कि- ''जो सदैव सबका मित्र है जो सदैव सबके हित में संलग्न है, वही वास्तविक अर्थों में मनसा, वाचा, कर्मणा अथवा धर्म को जानता है। (म. भा. शां. प.)। गीता द्वारा कर्मयोग की जो विशालधारा प्रवाहित हुई उसके द्वारा न केवल भारतीय काव्य की अपितु समस्त सांस्कृतिक क्षेत्र सिञ्चित हुआ। गीता ने मानव को स्वाभाविक संकीर्णता से उठा कर लोकहित में नियुक्त किया। गीता के समदृष्टि उपदेश भी अद्वितीय हैं। गीता द्वारा प्रतिपादित साम्यवाद भला कहाँ मिल सकता है। उसका कथन है-

''विद्या और विनम्रता सम्पन्न ब्राह्मण, गाय एवं हाथी, कुतिया एवं चाण्डाल इन सबको समान दृष्टि से देखते हैं। (गीता, अध्याय ५, श्लोक-१८) आत्म उद्धार के मार्ग में भी निर्देश देते लिखा गया कि-

''अपना उद्धार स्वयं करो, स्वयं का पतन न करो, क्योंकि आत्मा ही अपना मित्र होता है और

आत्मा ही अपना शत्रु है। अतः अपना उद्धार करना चाहिए। (गीता, ५/६)

भारतीय काव्य में विविधता की चारुता भी अतुलनीय है। भर्तृहरि के तीनों शतक इसके उदाहरण हैं। वहाँ कवि ने वैराग्य, नीति, शृङ्गार तीनों वृत्तियों को विषम बनाया है। वास्तव में इस विविधता का यह कारण है कि विभिन्न प्रवृत्तियों वाली सांस्कृतिक धारणा के उन्नायकों द्वारा काव्य के साध्य एवं साधन को अङ्गीकार किया गया। भारतीय काव्य न केवल रसिकों की रस की तृष्णा की परितृप्ति अथवा सन्तुष्टि हेतु है अपितु सज्जनों के सन्तर्पण हेतु शान्तरस की अजस्र धारा भी उसी के द्वारा प्रवाहित की गई । इसकी विविधता के मूल में हमारी संस्कृति के चारों वर्ण, चारों आश्रम, चारों प्रकार की वर्णव्यवस्था है। जिसमें सभी धर्म, सभी वर्ण तथा सभी आश्रम प्रतिष्ठित हैं।

वैदिक काल से ही भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के सामञ्जस्य का पूर्ण एवं अनवरत विकास प्रारम्भ हुआ। वैदिक युग में उस सूक्ष्म तत्त्व को महामहिमशाली ऐसा माना गया, जिसके लिए ब्रह्मचारियों ने तप किया। इस युग में साहित्य का स्वरूप भी सूक्ष्म हुआ। महाभारत युग में देवतावाद के चरमोत्कर्ष की उत्पत्ति एवं विराटता परिकल्पित हुई। दिग्विजय की सर्वोच्च प्रतिष्ठा इस युग में हुई। उसके अनुरूप विशाल साहित्य रचा गया। उत्तरकालीन युग में देवताओं का स्थान राजाओं, एवं ऋषियों का स्थान कवियों ने ले लिया। राजा के आश्रित कवियों की रचना राजा के व्यक्तित्व के अनुरूप हुई। इस साहित्य में देवताओं ने भी राजाओं के समान व्यवहार किया। इसलिए कालिदास के शिव के आदर्श यद्यपि वैदिक रुद्र का अनुकरण करते हैं तथापि कवि ने शिव के विवाह, आदि का रोचक चित्रण किया। इस काल में शृङ्गार रस की राजाओं के रूप में कल्पना की गई।

साम्प्रदायिक साहित्य की अभिवृद्धि मध्यकाल के साहित्य में विशेष रूप से हुई। वैदिक, जैन-बौद्ध धर्मों के सिद्धान्तों का आश्रय लेकर विशाल साहित्य की सर्जना हुई। हिन्दुधर्म में भी विभिन्न देवताओं का आश्रय लेकर विभिन्न साहित्यिक धाराओं का प्रचार हुआ। प्रायः सभी सम्प्रदायों में विशेषतया हिन्दुसम्प्रदाय में भक्ति- मार्गसाधना अधिकतर प्रचलित हुई। उससे सम्बद्ध विपुल साहित्य भी कवियों द्वारा रचा गया। इस प्रकार मध्ययुगीन साहित्य में भक्ति- साहित्य का स्थान ही श्रेष्ठरूप से पाया जाता है।

संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।

संस्थान-समाचार

अनुदान –विश्व धरोहर साधु आश्रम के संरक्षण के लिए केन्द्रीय राज्य मंत्री माननीय विजय सांपला जी के प्रयास से ओरिएंटल क्राफ्ट के मालिक श्री अनूप कुमार ठठई और श्री कृष्णकान्त कोहली जी ने साधु आश्रम के लिए १५लाख रूपये का चैक दान स्वरूप भेंट किया। इसके लिए साधु आश्रम के संचालक प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल तथा संस्थान कार्यकारिणी के मंत्री एडवोकेट बलदेव सहाय ओहरी जी ने ओरिएंटल क्राफ्ट के मालिकों तथा माननीय सांपला जी का धन्यवाद किया।

डी.ए.वी. कॉलेज मैनेजिंग कमेटी। — ५,००,०००/-
चित्र गुप्ता रोड़, नई दिल्ली।

दान:

प्रो. रेणू कपिला, — १०००/-
डी.सी. लिंक रोड़,
होशियारपुर।

श्रीमती इन्दू शर्मा — १५,०००/-
पत्नी श्री विजय कुमार शर्मा
५२, पारसन रोड़,
एस.एल. ३७ जी.यू.
सलोह, यू. के.
वी.वी.आर.आई. में स्व. श्री के.के. शर्मा जी की स्मृति में बनाये गये कमरे में फ्रिज के लिए दानस्वरूप राशि दी गई।

डॉ. अश्विनी जुनेजा — ११००/-
रुक्मिणी स्कैन सैंटर एवं हस्पताल
सामने नई तहसील कम्पलैक्स,
होशियारपुर।

सर्वश्री वैजनाथ भण्डारी पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट — ३०,०००/-
एफ २२, डीफैंस कालोनी, नई दिल्ली।

श्री एम. पी. वीर — ११००/-
१८-सी, विजय नगर, दिल्ली।

प्रो. नवल किशोर शर्मा — १०००/-
ऊना रोड़, होशियारपुर।

अतर दीवान ट्रस्ट — ११००/-
कुमार निवास, कम्पनी बाग,
सिवल लाईन, मुरादाबाद, यू.पी.।

वार्षिक सदस्यता शुल्क:-

श्री वीरेन्द्र कुमार — ५००/-
गली नं. १, मकान नं.२२,
गौतम नगर, होशियारपुर।

श्री ओमप्रकाश सूद — ५००/-
वी-१-१०३८/१०,
राम गली, निकट बहादुरपुर गेट,
होशियारपुर।

हवन-यज्ञ– विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से किया जाता है। **अमृतवाणी-पाठ**– नवम्बर 2018 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में ही परमपूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का पाठ भी किया गया।

विविध-समाचार

डॉ. भवानीलाल भारतीय जी नहीं रहे- यह ज्ञानकर अत्यन्त दु:ख और खेद हुआ कि स्वामी दयानन्द जी के सच्चे अनुयायी, आर्यसमाज के स्तम्भ, यशस्वी लेखक, विभिन्न आर्य संस्थाओं से संबद्ध डॉ. भवानीलाल भारतीय जी का ११ सितम्बर २०१८ को देहान्त हो गया। आपका जन्म ६ जून, १९२८ को राजस्थान में हुआ। आप अपने अन्तिम दिनों तक अपने लेखन कार्य से संबद्ध रहे। आप ने स्वामी दयानन्द से संबंधित तथा आर्यसमाज से संबंधित अनेकों पुस्तकों की रचना की। इसके अतिरिक्त सैंकड़ों की संख्या में लेखों की रचना की। आप आर्यसमाज से संबंधित कई संस्थाओं तथा पत्रिकाओं और पत्रों से संबद्ध रहे। आपने आर्यसमाज तथा वेदों के प्रचार के लिए विभिन्न देशों की कई बार यात्रा भी की। आपने विभिन्न विद्यालयों और महाविद्यालयों में अध्यापन कार्य भी किया। आप पंजाब यूनिवर्सिटी की दयानन्द चेअर के भी कई वर्षों तक चेअरमैन रहे, इसी के अन्तर्गत आप कुछ समय तक विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु भारत भारती अनुसंधान संस्थान, (पंजाब विश्वविद्यालय पटल) होशियारपुर के भी कार्यवाहक चेअरमैन रहे और आपका साधु आश्रम, होशियारपुर में कई बार आना होता था। आप वी.वी.आर.आई. से प्रकाशित मासिक पत्रिका विश्वज्योति के भी अत्यन्त प्रशंसक थे तथा अपने जीवनकाल के अन्तिम क्षणों तक विश्वज्योति में अपने सारगर्भित एवम् परमोपयोगी लेखों को प्रकाशनार्थ सर्वदा भेजते थे, जिससे विश्वज्योति के पाठक उनके विचारों से सर्वदा परिचित होते रहते थें, उनके जाने से विश्वज्योति जैसी पत्रिका के पाठकों के सहित संस्थान के कर्मिष्ठ भी महती क्षति का अनुभव कर रहे हैं। इस प्रकार एक यशस्वी लेखक और समर्पित आर्यसमाजी के चले जाने से समाज को एवं विभिन्न संस्थाओं को जो हानि हुई है उसकी पूर्ति होना अत्यन्त असंभव है। संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की भारतीय जी के परिवार के प्रति सम्वेदना है और प्रभु से प्रार्थना है कि वह उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे और परिवारजनों एवं बन्धु-बन्धवों को इस दु:ख को सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

ॐ शान्तिः। शान्तिः।। शान्तिः।।

भारत की लौहपुरुष पटेल को श्रद्धांजलि- ३१ अक्टूबर, २०१८ को माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने सरदार वल्लभ भाई पटेल की गुजरात के (साधुबेट-नर्मदाजिला) में १८२ मीटर ऊंची (संसार में सबसे ऊंची स्थापित मूर्ति) विशाल प्रतिमा 'स्टैच्यू ऑफ यूनिटी' का सरदार पटेल की १४४ जयन्ती पर अनावरण कर उसे राष्ट्र को समर्पित किया। इसका अनावरण कर देश ने लौहपुरुष के नाम से विख्यात सरदार पटेल को अपनी श्रद्धांजलि भेंट की है। इस विशालकाय प्रतिमा का निर्माण भारत के कोने-कोने से लाई गई मिट्टी और लोहे से किया गया है। इस प्रतिमा पर लगभग एक हजार साल तक प्रकृति के प्रकोप का कोई असर नहीं होगा क्योंकि इसे कई धातूओं से निर्मित किया गया है। इस प्रतिमा पर ऊपर जाने के लिए लिफ्ट भी लगी हुई है। इस प्रतिमा के आस-पास का दृश्य मनमोहक है। इस प्रतिमा को देखने के लिए प्रतिदिन देश के कोने-कोने से हजारों लोग आ रहे हैं। इस प्रकार भारत को एकजुट करने और भारत को सशक्त करने वाले लौहपुरुष, देशभक्त सरदार पटेल की प्रतिमा 'स्टैच्यू ऑफ यूनिटी' के निर्माण द्वारा भारतीय जनता की उन्हें श्रद्धांजलि है यह जनता की लौहपुरुष के प्रति कृतज्ञता को दर्शाती है।

गाङ्गं परमपवित्रं दुरितानि कलेरपाकरोति यथा।
श्रीमद्-गुरुः समेषामज्ञानमलान् निराकरोति।।

सूक्तिमुक्तावली, १२२

जिस प्रकार कलियुग में गंगा का परम पवित्र जल सभी प्रकार के पापों को दूर करता है। उसी प्रकार सद्गुरु अपने सत्संग अथवा उपदेशों से शिष्य के समस्त अज्ञानरूपी मलों (बुराईयों) को दूर कर देता है।

पूजनीय माता स्वर्गीय श्रीमती रुक्मिणी देवी

(निधन 31-07-2011) व

पिता स्वर्गीय श्री चमन लाल जुनेजा

(निधन 10-12-2000)

की याद में

प्रयोजक वर्ग:

डॉ. श्रीमती नीलम जुनेजा, डॉ अश्विनी जुनेजा (पुत्रवधू व पुत्र)
डॉ श्रीमती शुभदा जुनेजा, डॉ. चैतन्य जुनेजा (पौत्रवधू व पौत्र)
डॉ. श्रीमती वैशाली जुनेजा, डॉ. अक्षय जुनेजा (पौत्रवधू व पौत्र)
अनायशा जुनेजा (प्रपौत्री)

रुक्मिणी स्केन सैंटर एवं हस्पताल,
सामने नई तहसील कम्पलैक्स, होशियारपुर।

यत् यत् परवशं कर्म तद् तद् यत्नेन वर्जयेत्।
यद् यद् आत्मवशं तु स्यात् तत् तत् सेवेत यत्नतः।।

मनुस्मति ४.१५९

जो कार्य दूसरे के अधीन हो अर्थात् जो कार्य पराये के अधीन हो, मनुष्य को उस कार्य में यत्न करना छोड़ देना चाहिए। परन्तु जो कार्य अपने अधीन हो, उस कार्य को यत्नपूर्वक करना चाहिए।

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित

श्री सत्यपाल शर्मा

१३४४, फेस-II
शिवालक ऐवन्यू, नया नंगल (पंजाब)

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-११-२०१८ को प्रकाशित।